ओ३म्

सार्वदेशिक आर्यवीर दल

बौद्धिक एवं शारीरिक पाठ्यक्रम प्रथम-द्वितीय वर्ष



अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु

डॉ० देवव्रत आचार्य

सार्वदेशिक आर्यवीर दल

बौद्धिक एवं शारीरिक पाठ्यक्रम

प्रथम-द्वितीय वर्ष

स्वामी देवव्रत

प्रधान सञ्चालक

सार्वदेशिक आर्यवीर दल

प्रकाशक

सार्वदेशिक आर्यवीर दल

प्रकाशक

सार्वदेशिक आर्यवीर दल

११९-गुरुकुल गौतम नगर, नई दिल्ली-४९

संस्करण : २०१७ ई०

मूल्य : ३० रु०

मुद्रक :

राधा प्रेस,

38/2/16, साइट 4, साहिबाबाद (उ.प्र.)

भूमिका

विचार मनुष्य की सबसे बड़ी सम्पत्ति है। व्यक्ति जैसा चिन्तन करता है वैसा वाणी से बोलता है, जैसी वाणी बोलता है, वैसा करता है और जैसा करता है वैसा ही बन जाता है। किसी को बदलना है तो उसके बाह्य स्वरूप को न बदलकर केवल उसके विचारों में ही परिवर्तन कर दिया जाए तो शेष कार्य वह अपने-आप कर लेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं।

विचारशीलता की गति यौवनावस्था के प्रारम्भ में अत्यधिक होती है। इस समय बालक किसी को भी अपना आदर्श मानकर उसकी ओर आकर्षित होने लगता है। इस समय उसे सही मार्गदर्शन की अत्यन्त आवश्यकता है, अन्यथा भ्रमित होकर वह अपने मार्ग से विचलित भी हो सकता है।

सार्वदेशिक आर्यवीर दल की प्रथम-द्वितीय श्रेणी के आर्यवीरों के लिए यह पाठ्यपुस्तक इसी तथ्य को ध्यान में रखकर लिखी गई है। प्रशिक्षण शिविरों में जहाँ शारीरिक क्षमता का विकास, अनुशासन एवं आत्मरक्षण का प्रशिक्षण दिया जाता है, वहीं सन्तुलन बनाये रखने के लिए उनका बौद्धिक विकास भी अनिवार्य है। बल एवं बुद्धि दोनों से समृद्ध होकर ही व्यक्ति जीवन में प्रगति कर सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक में आर्य वीर दल के उद्देश्य, आर्यवीर के कर्तव्य, आर्य-सिद्धान्त, चरित्र, अनुशासन, स्वास्थ्य आदि का ज्ञान सरल भाषा में लिपिबद्ध किया गया है, जिससे आर्यवीर शरीर से सुदृढ़, विचारों में प्रबुद्ध और कर्तव्य-पथ पर अडिग बन सकें दैनिक सन्ध्या, यज्ञ, प्रातः जागरण, शयन के मन्त्र, ध्वजगान, राष्ट्र गान अर्थसहित देने तथा शारीरिक पाठ्यक्रम का समावेश करने से इसकी उपयोगिता और बढ़ गई है। विषय को समझने के लिये, चित्र भी दिये हैं। आशा है यह एकादश परिवर्धित संस्करण भी पूर्ववत् ही समादृत होगा।

स्वामी देवव्रत

विषय सूची

१- आर्यवीर दल, उद्देश्य, आवश्यकता, आदर्श. ५-७
२- आर्यवीर दल का ध्वज. ८-९
३- आदर्श आर्यवीर. १०-१७
४- अनुशासन. १७-२१
५- चरित्र-निर्माण. २२-२६
६- देशभक्ति. २७-३०
७- स्वास्थ्य रक्षा. ३१-३९
८- बुद्धि. ३९-४५
९- आर्यवीर दल इतिहास के झरोखों से. ४५-५१
१०- आर्य-संस्कृति. ५१-५५
११- आर्यजाति उत्थान, पतन. ५७-६८
१२- आर्यसमाज. ६८-७३
१३- शारीरिक पाठ्यक्रम, प्रथम श्रेणी. ७४-७८
१४- शारीरिक पाठ्यक्रम, द्वितीय श्रेणी. ७८-८४
१५- सन्ध्या, यज्ञ, विशेषमन्त्र. ८५-९१
१६- यज्ञ-प्रार्थना. ९१-९५
१७- आर्यसमाज के नियम. ९६
१८- चित्रावली. ९७-११२

१- आर्य वीर दल उद्देश्य, आवश्यकता एवं आदर्श

आर्य शब्द का अर्थ 'श्रेष्ठ व्यक्ति' है। निरुक्त में इसका अर्थ 'ईश्वर-पुत्रः' किया है। जो ईश्वर का भक्त हो और उसकी आज्ञा अर्थात् वेदोक्त धर्म का पालन करे, उसे आर्य कहते हैं। आर्य के आठ लक्षण हैं-

ज्ञानी, तुष्टश्च, दान्तश्च, सत्यवादी, जितेन्द्रियः।
दाता, दयालु, नम्रश्च स्यादार्यो ह्यष्टभिर्गुणैः।।

अर्थात् ज्ञान (विद्या), सन्तोष, मन पर नियन्त्रण, सत्यभाषण, इन्द्रियों को वश में करना, दान, दया और विनम्रता ये आठ गुण आर्य में होने चाहिएँ। यह शब्द संस्कृत की 'ऋ' धातु से बना है, जिसका अर्थ 'गति करना' होता है। प्रगतिशील व्यक्ति को ही आर्य कहते हैं।

'वीर' शब्द 'वीर विक्रान्तौ' धातु से बना है। जो व्यक्ति पराक्रमी हो अथवा जिसे सम्मुख देखकर शत्रु को कँपकँपी छूट जाए उसे वीर कहा जाता है।

'दल' शब्द संगठन का वाचक है अथवा दलनार्थक 'दल' धातु से इसकी व्युत्पत्ति होतीहै। इस प्रकार आर्यवीर दल शब्द का अर्थ हुआ 'श्रेष्ठ चरित्रवान् वीरों का संगठन'। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पहले आर्य बनना आवश्यक है, अन्यथा केवल वीरता सज्जन लोगों की रक्षा के स्थान पर उन्हें पीड़ित भी कर सकती है। अच्छे और शूरवीर व्यक्ति भी यदि संगठन में नहीं रह सकते तो उनकी ही विजय होगी, ऐसा कहना कठिन है। इसलिए आर्यवीर में बुद्धि एवं बल, ब्राह्मण एवं क्षत्रिय के गुणों का समावेश तथा उत्कृष्ट श्रेणी का अनुशासन होना अनिवार्य है।

आर्यवीर दल का उद्देश्य :

(१) वैदिक धर्म, आर्य-संस्कृति एवं आर्य-सभ्यता की रक्षा, प्रचार और प्रसार करना।

(२) समस्त उचित उपायों द्वारा आर्यजाति में क्षात्रधर्म का प्रचार, प्रशिक्षण देकर स्वात्म-रक्षण और राष्ट्र-रक्षार्थ किसी भी विपत्ति का सामना करने के लिए सन्नद्ध रहना।

(३) जनता की सेवा के लिए आर्यवीरों को प्रशिक्षित करना।

संक्षेप में संस्कृति रक्षा, शक्ति सञ्चय और सेवाकार्य, आर्यवीर दल का उद्देश्य है।

आवश्यकता :

यह प्रश्न पूछना वैसा ही है जैसे कोई किसी माता से पूछे कि तुम्हें पुत्र की क्या आवश्यकता है? आर्यसमाज हमारी मातृ संस्था है, महर्षि स्वामी दयानन्द गुरु, आचार्य और पितृतुल्य पथ-प्रदर्शक हैं। जिस माता की पवित्र गोद में वेद-मन्त्रों की लोरियाँ सुनकर हमें शान्ति मिली, स्वामी दयानन्द जी के शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति के सन्देश ने हममें नव-जीवन का सञ्चार किया, क्या यह उचित है कि उस माता की गोद बिना पुत्र के सूनी ही रह जाए।

प्रत्येक धार्मिक एवं राजनैतिक संगठन की युवा इकाईयाँ बनी हुई हैं, जिनसे मंजे हुए कार्यकर्ता बड़े होकर आगे संगठन का कार्य सँभालते हैं, परन्तु सैकड़ों डी॰ए॰वी॰ विद्यालयों एवं महाविद्यालयों तथा अनेक गुरुकुलों के होते हुए भी आर्यसमाज में सर्वत्र कार्यर्त्ताओं का अकाल-सा प्रतीत हो रहा है। किसी संस्था के जीवित रहने के लिए यह आवश्यक है कि उसमें नया रक्त, जो उसी वर्ग का हो आता रहे।

अच्छे कार्यकर्ताओं के अभाव में अन्य संगठनों के व्यक्ति योजनाबद्ध तरीके से आर्यसमाज के पदाधिकारी बन बैठे और वे ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों के विपरीत अन्य अवैदिक कार्य करने में प्रवृत्त हो रहे हैं।

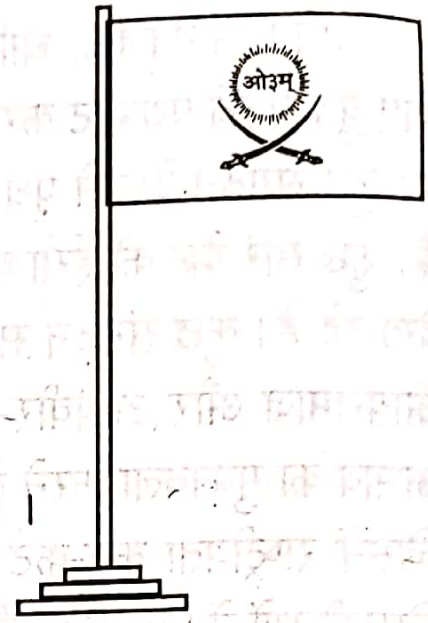
आर्यवीर दल वह फैक्ट्री है जहाँ से चरित्रवान्, बलिष्ठ, सुसंस्कृत और अनुशासित युवकों का निर्माण होता है। इन्हीं तपे हुए नवयुवकों के कंधों पर आर्यसमाज का भविष्य निर्भर है।

आर्यसमाज के अधिकारी एवं सदस्यों के बच्चों को भी आर्यसमाज में आकृष्ट करने एवं उन्हें आर्य बनाने का एक ही उपाय है कि प्रत्येक आर्यसमाज में आर्यवीर दल की स्थापना अनिवार्य की जाए। आर्यसमाजों की ओर से व्यायामशालाओं, पुस्तकालयों के अतिरिक्त बच्चों की वाद-विवाद प्रतियोगिताएँ,

क्रीड़ा-स्पर्धाएँ रचनात्मक तथा अन्य सेवा के कार्य आर्यवीर दल के माध्यम से करवाने चाहिएँ।

अनेक सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक संगठन अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए युवकों को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। अनेक प्रादेशिक संस्थाओं का गठन हो रहा है। कुछ संगठन देश से पृथक् होने एवं निर्दोष लोगों की बलि लेने पर तुले हुए हैं। कुछ सारे देश को ईसा की भेड़ों या इस्लाम के झण्डे के नीचे लाने का स्वप्न देख रहे हैं। कुछ संगठन सामाजिक होते हुए भी राजनीति चला रहे हैं। केवल आर्यसमाज और आर्यवीर-दल ही ऐसा संगठन है जो अज्ञान, अन्याय और अभाव का मुकाबला करने के लिए कृतसंकल्प है, जो मनुष्यमात्र का हितैषी है, जिसमें राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई है, जाति-पाँति, छुआ-छूत का जहर जिसकी रगों में विद्यमान नहीं है, संस्कृति-रक्षा, शक्ति-सञ्चय एवं मानवमात्र की सेवा करना ही जिसका आदर्श है, जिसका खुला संविधान एवं व्यावहारिक जीवनदर्शन है, **"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"** सारे संसार को श्रेष्ठ बनाओ' ही जिसका उद्घोष है और देव दयानन्द के सपनों का 'आर्यराष्ट्र' निर्माण करने का अरमान है।

२-आर्यवीर-दल का ध्वज



ध्वज किसी भी राष्ट्र, जाति या संगठन की भावनाओं का प्रतीक होता है, जिससे उन्हें प्रेरणा मिलती है।

आर्यवीर-दल के ध्वज का स्वरूप :

(१) भित्तिका अरुण वर्ण की।[1]

(२) लम्बाई पृथिवी के समानान्तर एवं चौड़ाई ध्वज दण्ड के समानान्तर का अनुपात ३:२ । आकृति आयताकार।

(३) मध्य में सूर्यमण्डल।

(४) सूयमण्डल के मध्य में 'ओ३म्' लिखा हुआ।

(५) सूर्यमण्डल के नीचे एक-दूसरे को काटती हुई दो तलवारें।

(६) वस्त्र शुद्ध स्वदेशी।

(७) ध्वजदण्ड सफेद रंगा हुआ।

अभिप्राय :

ध्वज का रंग अरुण (उगते हुए सूर्य का वर्ण) तेजस्विता का प्रतीक है। इसके अतिरिक्त इसके साथ बलिदान की भावना भी जुड़ी हुई हैं। मध्यकाल में राजपूत योद्धा केसरिया रंग के वस्त्र पहनकर ही जौहर व्रत का अनुष्ठान करते थे। यह रंग अग्नि का भी है।

ध्वज के मध्य में सूर्य का चिह्न प्रकाश का प्रतीक है। सूर्य से ही पृथिवी पर प्राणिमात्र का जीवन सम्भव है। जिस प्रकार सूर्य अन्धकार को दूर कर सारे जग को आलोकित करता है, उसी भाँति इस पताका को हाथ में लेकर आर्यवीर सारे संसार में ज्ञान का प्रकाश करें, यह अभिप्राय है। इसका अर्थ यह भी है कि सूर्य के समान नियमबद्धता, परोपकार, गति एवं आत्म-प्रकाश प्रत्येक आर्यवीर में

१- अरुणाः सन्तु केतवः। -अथर्ववेद ११ । १० । ७

होना चाहिए तभी वह अन्य लोगों को आकर्षित कर सकता है। सूर्य संसार का चक्षु है, इसी भाँति आर्यवीर भी लोगों के पथ-प्रदर्शक बनें।

सूर्य मण्डल के मध्य में ओंकार का चिह्न आस्तिकता का प्रतीक है। 'ओ३म्' यह परमेश्वर का मुख्य नाम है। अन्य नाम गुणों के आधार पर हैं। इसका अर्थ व्यापक और रक्षक है। प्रत्येक आर्यवीर ईश्वर को सर्वव्यापक मानकर बुराइयों से बचे और उसे रक्षक जान निर्भय रहे तथा उसका स्मरण भी करे यही इसका भाव है।

सूर्यमण्डल के नीचे परस्पर एक-दूसरे को काटती हुई तलवारें शक्ति का प्रतीक हैं। हम केवल शान्ति के ही पुजारी नहीं हैं, अपितु-

अग्रतश्चतुरो वेदाः पृष्ठतः सशरं धनुः।
इदं ब्राह्मं इदं क्षात्रं शापादपि शरादपि।।
शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते।

शस्त्र और शास्त्र, ब्रह्म और क्षत्र दोनों की प्राप्ति ही हमारा लक्ष्य है, क्योंकि बिना शस्त्र शास्त्र निष्फल रहते हैं।

जहाँ शस्त्र बल नहीं शास्त्र पछताते या रोते हैं।
ऋषियों को भी सिद्धि तप से तभी मिलती है,
जब पहरे पर स्वयं धनुर्धर राम खड़े होते हैं। - दिनकर

ध्वज का वस्त्र स्वदेशी इसलिए है कि हम स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करने की ओर प्रवृत्त हों।

ध्वज का दण्ड सफेद वर्ण का इसलिए है कि कुल मिलाकर हम शान्ति चाहते हैं। सफेद रंग शान्ति का प्रतीक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यवीर-दल के ध्वज में आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य (छठा नियम), शारीरिक (तलवार), आत्मिक (ओ३म्), सामाजिक (सूर्य-परोपकार का चिह्न) अन्तर्निहित हो रहा है।

३- आदर्श आर्यवीर

भारतभूमि रत्नगर्भा है। इस पुण्य भूमि में जन्म लेने के लिए देवता भी लालायित रहते हैं।[१] इसके विश्वविद्यालयों में आकर समस्त भूगोल के निवासी ज्ञान-विज्ञान का रसास्वादन कर अपना मनुष्यजन्म सार्थक समझते थे। वे ऋषि, महर्षि, ब्राह्मणों के चरणारविन्द में बैठकर अपने चरित्र का निर्माण करते हुए अपना अहोभाग्य मानते थे।[२]

रामायण एवं महाभारत आर्य-संस्कृति की अनुपम निधि हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी का आदर्श आज भी कोटि-कोटि मनुष्यों को प्रेरित कर रहा है। कल राजतिलक होनेवाला है, यह जानकर भी राम के मन में अहंकार नहीं है, वे समुद्र के समान गम्भीर बने रहते हैं। अगले दिन चौदह वर्ष के वनवास की आज्ञा मिलती है तब भी वे शान्त, धीर और प्रसन्नमुख हैं। **"सम्पत्तौ व विपत्तौ च महतामेकरूपता"** यह उक्ति उनपर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। संसार में ऐसा उदाहरण ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। भरत ननिहाल से आकर राम को वापस अयोध्या में लाने के लिए सेना लेकर वन में जाते हैं। दोनों की भेंट होने पर भरत राम से अयोध्या का राजसिंहासन सँभालने का आग्रह करते हैं और स्वयं वन में रहने के लिए कृतसंकल्प हैं।

राजतिलक की गेंद बनाकर खेलन लगे खिलारी।
इधर राम और उधर भरत दोनों ने ठोकर मारी।।

अन्य जातियों का इतिहास पढ़ जाइए, उनका सारा इतिहास सत्ता-प्राप्ति के लिए भाई, पिता, पुत्र के रक्त से रंजित मिलेगा। संसार के इतिहास में ऐसा उदाहरण अन्यत्र मिलना दुष्कर है, जहाँ चौदह वर्ष तक खड़ावों ने राज्य किया हो। महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने रामायण लिखकर अपनी लेखनी को

१- गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयाः पुरुषाः सुरत्वात्।। - विष्णुपुराण

२- एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं पृथिव्यां सर्वमानवाः।। - मनुस्मृति

अमर कर लिया है और यह स्वाभाविक ही है-

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।।

रावण द्वारा सीता का अपहरण किये जाने पर सीता द्वारा विमान से गिराये गये आभूषणों को सुग्रीव द्वारा दिखलाने पर श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण से कहते हैं- 'भाई लक्ष्मण! मैं शोक-संतप्त होने के कारण इन आभूषणों की ठीक पहचान करने में असमर्थ हूँ, आप इन्हें पहचानें।' यह सुनकर लक्ष्मण ने जो उत्तर दिया वह आर्यवीरों के चरित्र की पराकाष्ठा है-

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्।।

"हे भाई राम! मैं (केयूर) बाजू के आभूषण एवं कानों के कुण्डलों को नहीं पहचान सकता, माता सीता के पैरों के आभूषण (नूपुर) को ही मैं जानता हूँ, क्योंकि मैं प्रतिदिन प्रातः उनके पैरों में झुककर प्रणाम किया करता था।" वीर लक्ष्मण का यह आदर्श अद्वितीय है। इसी अखण्ड ब्रह्मचर्य के बल से उन्होंने मेघनाद जैसे शूरवीर योद्धा पर विजय पायी थी।

महर्षि कण्व के आश्रम में दुष्यन्त का पुत्र वीर बालक भरत बचपन में ही शेरों के बच्चों को पकड़कर उनके दाँत गिनता और बनैले सूअरों को पूँछ से घसीट कर उन्हें वृक्षों से बाँध देता था। यही बालक आगे जाकर चक्रवर्ती राजा बना। उसी के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ।

योगिराज श्रीकृष्ण से सभी देशवासी परिचित हैं। उन्होंने युवावस्था के प्रारम्भ में अपने माता-पिता को बन्दी बनानेवाले अत्याचारी और क्रूर मामा कंस को मार गिराया। राजसिंहासन पर उनके पिता उग्रसेन को बिठाया। पाण्डवों को फिर से उनका राज्य लौटा देने के लिए स्वयं दूत बनकर दुर्योधन के दरबार में गये। दुर्योधन को बहुविधि समझाया, परन्तु उसने बिना युद्ध के सूई की नोंक के बराबर भी भूमि देने से इन्कार कर दिया और श्री कृष्णजी को बन्दी बनाने का षडयन्त्र रचा। परिणामस्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ। युद्धभूमि में अर्जुन द्वारा भीरुता दिखाने पर उन्होंने गीता का अमर उपदेश दिया। आज संसार की सभी

समृद्ध भाषाओं में गीता का अनुवाद हो चुका है। श्रीकृष्णजी की रणनीति एवं राजनैतिक कौशल से ही पाण्डवों की विजय हुई। अपने समय में वे योग, राजनीति एवं बल में सर्वाग्रणी थे। उनके पास सुदर्शन चक्र नामक अद्वितीय प्रक्षेपास्त्र था, जो सूर्य की किरणों से उत्पन्न विद्युत् द्वारा चलता था और शत्रु को मारकर पुनः वापस लौट आता था। सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी अभिमान उनको छू तक नहीं गया था। महाराजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उन्होंने देश-देशान्तर से आये ऋषि, महर्षि, राजा, महाराजा और विद्वान् अतिथियों के पैर धोने और सेवा-कार्य का उत्तरदायित्व स्वयं लिया। यज्ञ के अन्त में जब सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति का सम्मान करने का प्रश्न आया तो भीष्म पितामह ने उन्हीं के नाम की संस्तुति की।

राजनीति के अद्वितीय विद्वान् महात्मा चाणक्य का नाम कौन नहीं जानता, जिन्होंने अपने बुद्धिबल से अन्यायी राजा नन्द को मगध के राजसिंहासन से उतारकर चन्द्रगुप्त को प्रतिष्ठापित किया। चन्द्रगुप्त के समय भारतवर्ष की सीमाएँ काबुल-कन्धार तक थीं। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसके सेनापति सैल्यूकस ने भारत पर चढ़ाई की, परन्तु वह पराजित हुआ और उसने चन्द्रगुप्त से सन्धि करके अपनी पुत्री हेलन का विवाह भी उसके साथ कर दिया तथा दहेज के रूप में अपने राज्य का कुछ भाग भी देकर गया। यह सब चाणक्य की बुद्धि एवं चन्द्रगुप्त के शौर्य का ही चमत्कार था। उनकी अनुपम कृति 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' आज भी राजनीतिज्ञों का मार्गदर्शन करती है।

महाराणा प्रताप का नाम यहाँ के बच्चे-बच्चे को याद है। उनके दादा महाराणा संग्रामसिंह के शरीर पर अस्त्र-शस्त्रों के अस्सी घाव थे। युद्ध में उनकी एक आँख तथा एक भुजा भी जा चुकी थी फिर भी मातृभूमि की रक्षा के लिए विदेशी आक्रान्ता बाबर का बहादुरी से मुकाबला किया। जिस समय अन्य राजपूत राजाओं ने अकबर को अपनी लड़कियाँ देकर उसकी अधीनता स्वीकार कर ली, उस समय भारत माँ का यह वीर सपूत, सिसौदिया वंश की गौरव-पताका को उन्नत किये हुए अकबर से लोहा लेता रहा। जंगलों की खाक छानते हुए घास-फूँस की रोटियाँ खानी स्वीकार कीं, परन्तु मेवाड़ का मस्तक नीचा न होने दिया। प्रताप का नाम सुनकर आज भी आर्य-सन्तान का सीना गर्वोन्नत हो जाता है।

अकबर द्वारा चित्तौड़ के किले की घेरावन्दी करने पर राजपूत स्त्रियों ने जौहर-व्रत का आश्रय लिया। वीर राजपूत केसरिया बाना पहनकर भूखे सिंह की भाँति यवनों पर टूट पड़े। वीरवर फत्ता (प्रतापसिंह) को जिनके अभी भली-भाँति मूँछें भी नहीं आयीं थीं, सेनापति बनाया गया। माता ने आशीर्वाद दिया, बहनों ने तिलक किया। माता ने न केवल आशीर्वाद दिया अपितु स्वयं तथा अपनी पुत्रवधू (प्रतापसिंह की धर्मपत्नी) जिसका कुछ समय पहले ही पाणिग्रहण संस्कार हुआ था, जिसके हाथों की मेंहदी अभी मिट भी नहीं पाई थी, के साथ केसरिया बाना पहनकर शत्रु-सैन्य को गाजर-मूली की भाँति काटती हुई मातृभूमि की रक्षार्थ बलिदान हो गई। वीर फत्ता भी द्विगुणित उत्साह से अकबर के मदमस्त हाथियों की सूँड अपनी तलवार के प्रबल प्रहार से कदली-स्तम्भ की भाँति काटने लगे। हाथी चिंघाड़ मार-मारकर अपनी ही सेना को रोंदते हुए भागे। अकबर ने अपनी योजना विफल होते देखकर तीन हज़ार हाथियों के साथ पुनः चित्तौड़गढ़ के किले के पहले फाटक पर धावा बोल दिया। वीर जयमल, फत्ता वीरतापूर्वक लड़ते हुए देश के काम आये। चित्तौड़ को विजय करके अकबर ने उन वीरों की स्मृति में जयमल और फत्ता की हाथियों पर बैठी हुई मूर्ति आगरा किले के दरवाजे पर लगवाई।

जिस समय यवनों के त्रास से भारत भूमि संत्रस्त होकर 'त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!' कर रही थी, चारों ओर हिन्दुओं के मन्दिरों को भूमिसात् करके उनके स्थान पर मस्जिदें बनाई जा रही थीं, माता-बहिनों की लाज लूटी जा रही थी, चोटी और यज्ञोपवीत उतारकर बलात् इस्लाम धर्म अपनाने को बाध्य किया जा रहा था, उस समय अत्याचार की प्रबल आँधी के सामने चट्टान बनकर उसका विनाश करने के लिए वीर शिवाजी ने संग्राम का बिगुल बजाया। गौ, ब्राह्मण व आर्य-संस्कृति की फिर से रक्षा हुई। मन्दिरों में शंख-ध्वनि और वेदमन्त्रों का गान पुनः गूँजने लगा। आर्य-जाति के गौरव वीर शिवाजी के लिए ठीक ही कहा है-

राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवान को तिलक राख्यो,
स्मृति-पुराण राखे, वेद-विधि सुनी मैं।

राखी राजपूती, रजधानी राखी राजन की,
धरा में धर्म राख्यो, गुण राख्यो गुणी में।
'भूषण' सुकवि जीति हद मरहट्टन की,
देश देश कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साह के सपूत शिवराज, समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबिकै, दिवाल राखी दुनी में।

वीर बालक हकीकत का बलिदान कौन भुला सकता है जिसने बाल्यावस्था में धर्म रक्षार्थ सिर कटवाना मंजूर किया, परन्तु चोटी और जनेऊ को त्यागकर मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया। पिता भागमल और माता कौराँ देवी का वह इकलौता पुत्र धर्म की रक्षार्थ हँसते-हँसते बलिदान हो गया। आज भी उसकी स्मृति में प्रतिवर्ष बसन्त पंचमी का मेला लगता है।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही नामो-निशाँ होगा।

सरहिन्द के नवाब द्वारा आक्रमण किये जाने पर गुरु गोबिन्दसिंह जी ने चमकौर के किले में आश्रय लिया, परन्तु नवाब द्वारा सुदृढ़ घेराबन्दी किये जाने के कारण बाहर से खाद्य सामग्री का पहुँचना बन्द हो गया। सैनिक भूखों मरने लगे। जब सैनिक निरुत्साहित हो गये तो गुरु गोविन्दसिंह ने बड़े पुत्र अजीतसिंह, जिसकी आयु सोलह वर्ष की थी, को रणक्षेत्र में जाने की आज्ञा दी। वीर बालक आज्ञा सुनते ही तलवार लेकर शत्रुदल पर टूट पड़ा और लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। इसके पश्चात् गुरुजी ने दूसरे बालक जुझारसिंह को रणभूमि में जाने का आदेश दिया। उसने कहा कि "ज़रा मैं पानी पी लूँ। मुझे प्यास लगी हुई है।" इस पर गुरुजी ने कहा "तुम्हारे भाई के पास खून की नदियाँ बह रही हैं, वहाँ पर अपनी प्यास बुझा लेना।" जुझारसिंह भी रणभूमि में काम आया। गुरु गोविन्द सिंह वेष बदल कर निकल पड़े।

उनके दो छोटे पुत्र जोरावरसिंह और फतहसिंह अपने ही लोगों के षड्यन्त्र द्वारा पकड़े गये। सरहिन्द के नवाब ने उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा।

उनके द्वारा मना करने पर उन्हें जिन्दा ही किले की दीवारों में चिनवा दिया गया। गुरु गोविन्दसिंह को जब यह सूचना मिली तो उन्होंने संगत से कहा -

इन पुत्रन के कारणे वार दिये सुत चार।
चार मरे तो क्या हुआ जीवित कई हज़ार।।

गुरु-पुत्रों का बलिदान रंग लाया। वीर बन्दा वैरागी ने इस अपमान का बदला लिया। उन्होंने सरहिन्द की ईंट-से-ईंट बजा दी। आर्य-जाति में बन्दा वैरागी जैसे शूरवीर योद्धा विरले ही हुए हैं। उनके अचूक तीरों की मार से मुसलमान योद्धा रणभूमि में पीठ दिखाकर भाग खड़े होते थे। अपने बल-पौरुष से अत्यल्प समय में ही इस वीर ने पश्चिमी पंजाब से लेकर यमुना तक का क्षेत्र यवनों के आतंक से मुक्त करके गुरु गोविन्द सिंह के कार्य को पूरा किया, परन्तु फूट आर्यजाति का पुराना रोग है और इसी ने बन्दा बहादुर को पकड़वा दिया। उसके साथ छह सौ (६००) अन्य वीर भी पकड़े गये। इन सबको इस्लाम धर्म स्वीकार करने को कहा गया। मना करने पर दिल्ली में चाँदनी चौक के स्थान पर तलवार से प्रतिदिन सौ वीरों के सिर काटे जाने लगे। अन्त में वीर बन्दा की बारी आई। उसके सामने उसके कलेजे के टुकड़े छोटे बालक को मारकर उसे बन्दा वैरागी के मुँह पर मारा, पश्चात् लोहे की गर्म-गर्म सलाखों से उसका मांस नोचा गया, परन्तु वीर बन्दा ने आह तक नहीं की और शान्त मुद्रा में बैठे रहे। इसके बाद उन्हें हाथी के पैर से कुचलवाया गया और इस वीर ने मातृभूमि को अन्तिम प्रणाम करके संसार से विदा ली। यह अत्याचार की पराकाष्ठा थी। बन्दा वैरागी का बलिदान ईसामसीह के बलिदान से बढ़कर है, जिसे आर्यजाति कभी भी भुला नहीं सकेगी।

मुसलमानों के साम्राज्य का पतन होने के पश्चात् अंग्रेज़ों का आगमन हुआ। ये लोग व्यापार के बहाने इस देश में आये और कूटनीति से देश के शासक बन बैठे। उन्होंने यहाँ की संस्कृति को ही सदा के लिए मिटाने का षड्यन्त्र प्रारम्भ किया। मुसलमानों का राज्य सात सौ वर्ष रहा, परन्तु उनकी तलवार भारतीय संस्कृति को नहीं मिटा सकी। इधर अंग्रेज़ों ने इस पर कुठाराघात करना आरम्भ किया तो बूढ़े भारत की धमनियों में फिर से नये रक्त का सञ्चार हुआ। जिसका

परिणाम १८५७ ई० का स्वतन्त्रता संग्राम है। वीर मंगल पाण्डे ने स्वतन्त्रता युद्ध के लिए सर्वप्रथम अपने जीवन की आहुति देकर क्रान्ति का सूत्रपात किया। नाना फड़नबीस, ताँत्या टोपे, महारानी लक्ष्मीबाई ने क्रान्ति का बिगुल बजाया। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ा दिये। अपने बच्चे को पीठ पर बाँधकर घोड़े की लगाम मुँह में दबाकर दोनों हाथों से तलवार चलाती हुई इस वीरांगना ने अनेक अंग्रेज़ सैनिकों को यमपुर भेज दिया और वीरतापूर्वक लड़ते हुए शहीद हुई। अंग्रेज अफसर कर्नल हैवलाक के शब्दों में "यदि वह यूरोप के देशों में पैदा होती तो जॉन ऑफ आर्क के समान उसकी सर्वत्र पूजा की जाती।"

क्रान्ति की यह चिंगारी उस समय दबा दी गई, परन्तु तब भी भीतर-ही-भीतर सुलगती रही। देश को अंग्रेज़ों की दासता से मुक्त कराने के लिए पण्डित रामप्रसाद बिस्मिल, रोशन लाल, राजेन्द्र लाहिड़ी, शहीद भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव और अनेक क्रान्तिकारी वीरों ने फाँसी के फन्दे को जयमाला की भाँति चूमकर अपने आपको सदा के लिए अमर कर लिया। वीर सावरकर ने अण्डमान में कोल्हू चलाया। शचीन्द्र नाथ सान्याल दीर्घकालीन भूख हड़ताल करते हुए स्वर्ग सिधारे। चन्द्रशेखर आजाद जोकि क्रान्तिकारी दल के नेता थे, इलाहाबाद स्थित अल्फ्रेड पार्क में मुकाबला करते हुए शहीद हुए। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद-हिन्द-सेना बनाकर देश को अंग्रेज़ों की दासता से मुक्त कराने के लिए लड़ाई लड़ी। शहीद ऊधमसिंह ने इंग्लैंड में जाकर जलियाँवाला बाग के हत्यारे जनरल ओडवायर को भरी संभा में अपनी गोली का निशाना बनाकर बदला लिया। इन्हीं वीरों के बलिदान से देश स्वतन्त्र हुआ है।

उपसंहार :

आदर्श आर्यवीर वही है, जिसमें निम्नलिखित गुण विद्यमान हों -

१- राम जैसा आज्ञापालन।

२- लक्ष्मण जैसा तप।

३- हनुमान् जैसी स्वामिभक्ति।

४- बालक भरत के समान निर्भीकता।

५- श्रीकृष्ण जैसा निरभिमान, नीति एवं योग-विज्ञान।
६- चाणक्य के सदृश राजनीति का ज्ञान।
७- महाराणा प्रताप-सा प्रताप और स्वाभिमान।
८- जयमल फत्ता जैसा युद्ध-प्रयाण।
९- वीर शिवाजी जैसा साहस और नीतिज्ञता।
१०- वालक हकीकतराय जैसा धर्मप्रेम।
११- गुरु गोविन्दसिंह के वच्चों जैसी धर्मनिष्ठा एवं वीरता।
१२- वन्दा वैरागी जैसा वलिदान।
१३- स्वामी दयानन्द जैसा ब्रह्मचर्य और वेदज्ञान।
१४- रानी झाँसी जैसा संग्राम।
१५- क्रान्तिकारी वीरों जैसा स्वदेश प्रेम और स्वतन्त्रता अभियान।

४- अनुशासन

किसी भी संस्था को सुचारु रूप से सञ्चालित करने के लिए निश्चित किये गये नियमों के पालन करने को अनुशासन कहते हैं। अंग्रेज़ी भाषा में इसका अनुवाद (Discipline) होता है। Disciple शिष्य को कहते हैं। शिष्यत्व की भावना, आज्ञा-पालन या नियम-निर्देश का परिपालन करना ही अनुशासन कहलाता है।

अनुशासन से पहले शासन का होना अनिवार्य है। निश्चित विधि-विधान, नियम, आज्ञा, आचारसंहिता एवं दण्ड का नाम शासन है। आज्ञा एवं नियम का परस्पर सम्बन्ध है। आज्ञा को विशेषरूप में स्वीकार करने पर उसे पालन करने के लिए नियम, कानून और व्यवस्था का होना आवश्यक है, अन्यथा आज्ञा का पालन नहीं हो सकेगा।

शासन से पूर्व उसके निर्माता का होना अनिवार्य है। यह कार्य माता, पिता, गुरु, समाज एवं राजा के अधीन है। इसमें भी ध्यान रखने की बात यह है कि शासन के नियम और विधि-विधान यदि "वहुजन हिताय व बहुजन सुखाय"

होंगे तो जनसाधारण उसके अनुसार स्वेच्छा से चलने लगेगा। शासन के अनुकूल चलना ही अनुशासन कहा जा सकता है।

अनुशासन बाह्य न होकर स्वैछिक और आभ्यन्तर होना चाहिए। बलात् लादी गई कोई भी पद्धति कालान्तर में विद्रोह का रूप धारण कर लेती है। किसी कारण से सभी लोग यदि सहमत न हो सकें तो बहुमत का समर्थन आवश्यक है। जिनसे बलात् अनुशासन का पालन करवाना पड़े उन्हें भी युक्तिपूर्वक समझाने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे उनका हृदय परिवर्तन हो सके और वे समर्थन न सही, विरोध भी न कर सकें। इस उद्देश्य से साम, दाम, भेद और दण्ड-नीति का समयानुसार प्रयोग करना महत्वपूर्ण है।

अनुशासन ही व्यक्ति के व्यक्तित्व, समाज और राष्ट्र को महान् बनाता है। बाह्य संसार एवं आभ्यन्तर जगत् में हम देखते हैं कि सर्वत्र अनुशासन का साम्राज्य है। सृष्टि का सञ्चालन नियमपूर्वक हो रहा है। बीजों के अनुसार वृक्षों का अंकुरित, पुष्पित, पल्लवित होकर फल लगना और पुनः उन फलों से वैसे ही बीजों की उत्पत्ति- इन सब कार्यों में नियम, क्रम देखा जाता है। सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, उपग्रह एवं ब्रह्माण्ड के अन्य लोक-लोकान्तर अपनी नियत कक्षाओं में गति कर रहे हैं। मनुष्य द्वारा निर्मित छोटे विमानों की आकाश में परस्पर टक्कर हो जाती है, परन्तु आकाशीय पिण्डों को टकराते नहीं देखा गया।

मानव शरीर में भी विभिन्न तन्त्र परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी बनकर कार्य करते हैं। शरीर की प्रत्येक कोशिका अपना कार्य जानती है। किसी कारणवश जब ये कोशिकाएँ अपना नियम तोड़ देती हैं तो उस समय विकार प्रकट हो जाते हैं। कैंसर का रोग मुख्यतः शरीर की विभिन्न कोशिकाओं द्वारा विद्रोही होकर अनावश्यक रूप से बढ़ जाना ही है।

यदि जंगलों में जाकर पशु, पक्षी एवं कीट-पतंगों का अध्ययन करें तो विदित होगा कि जंगल का प्रत्येक प्राणी अपनी सुरक्षा के लिए समूह द्वारा निर्धारित संकेतों का पालन करता है। हाथी, हिरण, बन्दर, चींटियाँ, मधुमक्खियाँ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

मनुष्य भी एक सामाजिक प्राणी है। बिना समाज के उसका विकास सम्भव

नहीं है। सामाजिक उन्नति के लिए समाज द्वारा निर्दिष्ट नियम और विधान का पालन करना बहुत आवश्यक है। बच्चा बाल्यकाल में माता-पिता की प्रत्येक बात का अनुकरण तथा पालन करता है। विद्यालय में गुरु उसके बौद्धिक, शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अनेक नियमों का पालन करवाता है। विद्या-समाप्ति के अनन्तर गृहस्थ जीवन के नियम, जोकि समाज एवं राजाज्ञा द्वारा बनाये गये हैं, पालन करने पड़ते हैं। राज्य नियमों का पालन करना भी सभी के लिए अनिवार्य है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवन में सर्वत्र अनुशासन का ही बोलबाला है।

किसी भी संगठन को चलाने के लिए अनुशासन महत्वपूर्ण है। 'सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें', आर्यसमाज का यह नियम अनुशासन-पालन का ही संकेत कर रहा है। व्यक्ति से समाज और समाज से राष्ट्र बड़ा है, इसलिए जनहित के कार्यों में निजी स्वार्थ का त्याग करना पड़े तो उसे भी त्यागकर राष्ट्र-कल्याण के रथ को आगे बढ़ाना चाहिए। इसके लिए यह आवश्यक है कि किसी उच्च चरित्रवान्, धर्मात्मा, विद्वान् एवं व्यवहार-कुशल, पराक्रमी व्यक्ति को संगठन या राष्ट्र का नेता मानकर अन्य लोग उसकी आज्ञा-पालन में तत्पर रहें। नेता का भी यह कर्त्तव्य है कि वह निजी स्वार्थ का परित्याग करके अहर्निश जनता जनार्दन के हित-चिन्तन में तल्लीन रहे। किसी भी महत्वपूर्ण कार्य में योग्य व्यक्तियों से परामर्श अवश्य करे। तानाशाही या मनमानी करनेवाले नेता के विरुद्ध एक-न-एक दिन प्रजा विद्रोह का झण्डा उठा ही लेती है।

मनुष्य समुदाय में सबसे विशिष्ट सेना का संगठन है। बिना अनुशासन के सेना की कल्पना भी नहीं की जा सकती। विशाल भीड़ को छोटी-सी अनुशासित सेना छिन्न-भिन्न कर देती है। मिलकर सञ्चलन (मार्चिंग) दौड़ना, व्यायाम, अस्त्र-शस्त्र सञ्चालन, आक्रमण, सुरक्षा एवं विभिन्न संकेतों तथा आदेशों का अक्षरशः पालन एक अच्छे सैनिक के गुण हैं। उसे अपने नेता की प्रत्येक आज्ञा का ननु-नच किये बिना पालन करना चाहिए।

यहाँ इस तथ्य को भी हृदयंगम कर लेना चाहिए कि नेता जिन आदर्शों व

आज्ञाओं का परिपालन सैनिकों से करवाना चाहता है, उसके जीवन में वे आदर्श एवं कार्य मूर्तरूप में विद्यमान होने चाहिएँ अन्यथा उसकी आज्ञा का पूर्णरूप से पालन नहीं हो सकेगा। अनुभव में तो यही आया है कि यदि नेता में आवश्यक योग्यता है तो सैनिक उसके पीछे हँसते-हँसते जान की बाज़ी लगाने को सन्नद्ध रहते हैं। सेनापति को "जाओ, यह काम करो" के स्थान पर "आओ, हम सब यह कार्य करें" ऐसा कहना उचित है।

सैनिकों का भी यह कर्त्तव्य है कि व्यक्ति से राष्ट्र बड़ा है। किसी उच्च अधिकारी में यदि कोई न्यूनता है तो उस ओर ध्यान न देकर राष्ट्रदेव की रक्षार्थ सर्वथा उद्यत रहना चाहिए। एक-एक व्यक्ति से ही राष्ट्र बनता है। इसकी रक्षा करना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।

अनुशासन पालन के अनेक आदर्श हमारे समाने उपस्थित हैं- जैसे श्री रामचन्द्रजी का माता-पिता की आज्ञा मानकर वनगमन, लक्ष्मण का बड़े भाई के आदेशानुसार सीता को ऋषियों के आश्रमों में छोड़कर आना, गुरुकुल में अध्ययन करते समय उद्दालक एवं आरुणि का अपने गुरु आयोदधोम्य की आज्ञा मानकर भोजन-त्याग एवं वर्षा के समय जल-प्रवाह को रोकने के लिए मेंढ के स्थान पर स्वयं लेट जाना, वीर तानाजी का छत्रपति शिवाजी के आदेश से निज प्राणों की आहुति देकर भी सूर्योदय से पूर्व सिंहगढ़ के किले पर विजय-पताका फहराना, गुरु गोविन्दसिंह के पुत्र जुझारसिंह का युद्ध में जाने से पहले पानी माँगना और गुरु का यह आदेश कि जाओ, "जहाँ तुम्हारा भाई अजीतसिंह गया है वहीं रक्त से अपनी प्यास बुझाओ" सुनकर भूखे सिंह की भाँति अरिदल पर टूट पड़ना और लड़ते-लड़ते बलिदान हो जाना, वीर बालक कैसेबियंका का पिता की आज्ञानुसार जहाज पर खड़े रहना और जहाज में आग लग जाने पर भी अडिग रहकर अग्नि की लपटों में भस्म हो जाना इत्यादि।

अनुशासन परीक्षा की वह भट्टी है जिसमें तपकर सोना कुन्दन और पीतल काला हो जाता है। इसके लिए तप, संयम, आदर्श एवं कर्त्तव्य पालन का अभ्यास होना चाहिए। अनुशासन पालन वही करा सकता है जो स्वयं अनुशासित हो। इसका अभ्यास बचपन से करना आवश्यक है। माता-पिता की प्रत्येक हितकारी

वात को माननेवाला वालक ही आगे जाकर नेतृत्व संभालता है। अनुशासित वच्चे की शक्ति व्यर्थ कार्यों में न लगकर रचनात्मक कार्यों में लगती है। विद्यालय में अध्यापक को प्रतिदिन अभिवादन, दिये पाठ का स्मरण, अन्य नियमों का पालन उसे सभी गुरुजनों का प्रिय वना देता है।

हम प्रतिदिन देखते हैं कि किसी भी क्रीड़ा प्रतियोगिता में उसी दल को विजयश्री मिलती है जिसके खिलाड़ी अनुशासित और परस्पर तालमेल से खेलते हैं। जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए यही भावना प्रत्येक राष्ट्र के प्रबुद्ध नागरिक में होनी चाहिए। जापान देश इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् पूर्णरूप से ध्वस्त हो जाने के उपरान्त भी आज ज्ञान-विज्ञान और अर्थोपार्जन में उसने अमेरिका जैसे समृद्ध देशों को पीछे छोड़ दिया है। आओ, हम सब मिलकर इस उद्घोष को सर्वत्र उद्घोषित करें।

"अनुशासन ही देश को महान् बनाता है।"

अनुशासन की चार विशेषताएँ :

१- मुस्कराते हुए आज्ञा पालन करना।
२- निःसंकोच कठोर परिश्रम करना।
३- समय का पालन करना।
४- झूठ न बोलना, बहाने न बनाना।

५- चरित्र-निर्माण

संसार में व्यक्ति का चरित्र सबसे बड़ा है। धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य गया, तो कुछ गया परन्तु यदि चरित्र गया तो समझो सब-कुछ गया।

"अक्षीणो वित्ततः क्षीणः वृत्ततस्तु हतो हतः।" - महाभारत

अर्थात् जिस व्यक्ति के पास चरित्ररूपी रत्न है उसके आगे समस्त संसार नतमस्तक होता है। निर्धन धनवान् से डरता है, दुर्बल बलवान् से डरता है, मूर्ख विद्वान् से डरता है, परन्तु चरित्रवान् से ये सब डरते हैं। सांसारिक चमक-दमक, भोग भोगने के साधन, वैभव-विलास, आमोद-प्रमोद, सुख-सुविधा और मान-सम्मान उसे अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित नहीं कर सकते। चरित्रवान् व्यक्ति सुदृढ़ चट्टान की भाँति प्रलोभनों के प्रबल झंझावात के सामने अडिग रहता है। वे माता-पिता धन्य है। जिन्होंने ऐसे उज्ज्वल नरपुंगव को जन्म दिया है, जिसके दर्शन मात्र से ही लोग अपना अहोभाग्य समझते हैं। उसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है।

चरित्र मानव-जीवन का दर्पण है। चरित्र-व्यक्ति की आदतों (कार्यों) का समूह है। व्यक्ति प्रतिदिन जो कार्य करता है उसका संस्कार उसके मानस पर पड़ता है। ये संस्कार सुदृढ़ होकर स्वभाव (आदत) में परिणत हो जाते हैं। ये आदतें ही चरित्र कहलाती हैं।

चरित्र-निर्माण के लिए केवल बाहर की रूप-रेखा पर ही विचार करना पर्याप्त नहीं है। बाहर का चरित्र 'व्यवहार' कहलाता है। व्यवहार का व्यक्तिगत रूप 'आचार' है और आचार का मौलिक रूप 'विचार' है।

मनुष्य के जीवन में इससे अधिक सत्य और कोई बात नहीं है कि हम जैसा बनने का विचार करते हैं, वैसे ही बन जाते हैं। **'क्रतुमयः पुरुषः'** (उपनिषद्), अर्थात् पुरुष अपने संकल्पों का बना हुआ होता है। उसका प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक होता है, अर्थात् कार्य करने से पूर्व उसके मन में उस कार्य को करने का विचार (संकल्प) उत्पन्न होता है। वही संकल्प आगे जाकर कार्यरूप में बदल जाता है। इससे यह स्पष्ट हुआ कि चरित्र-निर्माण में विचार ही मूल कारण है।

चरित्र वह अनमोल हीरा है, जिसका जन्म माता की कोख से होता है। हीरे की उत्पत्ति सर्वत्र नहीं होती, इसके लिए विशिष्ट परिस्थितियों का होना आवश्यक है। ठीक इसी प्रकार धार्मिक एवं विदुषी माता बालक के गर्भ में आते ही संयम, सदाचार, आरोग्य, समुचित भोजन एवं सुव्यवस्थित जीवन व्यतीत करे, क्योंकि उसकी अमिट छाप बालक पर पड़ती है। जन्म के बाद पाँच वर्ष तक माँ बालक को शुद्ध उच्चारण, धार्मिक शिक्षा, सदाचार, संयम, शूरवीरता की शिक्षा देकर सभी दुर्गुणों से बचाये जिससे कि उस सुकोमल बालक के अन्तःकरण पर इन सद्गुणों की अमिट छाप पड़ जाए, तभी भविष्य में वह संसार के आघातों को सहन करने में समर्थ हो सकता है।

माता के पश्चात् पिता बालक का चरित्र-निर्माण करने का उत्तरदायित्व सँभाले। बालक को दिनचर्या, कर्त्तव्यकर्म, स्वास्थ्य रक्षा, शिक्षा एवं ब्रह्मचर्य के लाभ इत्यादि विविध उपदेश पिता को देने उचित हैं।

आठ वर्ष के पश्चात् माता-पिता इस अमूल्य हीरे को, जो यद्यपि बाहर-भीतर पूर्णरूप से हीरा है, परन्तु अस्पष्ट आकृतिवाला होने से अपनी दीप्ति से प्रदीप्त नहीं हो रहा है, गुरु को समर्पित कर दें। गुरु के गर्भ में इसका पुनः निर्माण होता है। इस बार उसे पहले से और सुदृढ़ बनाकर यम-नियमों के शाण-यन्त्र पर घिसाया जाता है। यदि कहीं कमी रह गई हो तो काट-छाँटकर उसे दूर किया जाता है। विद्या, योग एवं पुरुषार्थ की भट्टी में तपाया जाकर अब वह देदीप्यमान होकर अपनी ज्योत्स्ना से लोगों को चकाचौंध करने लगता है। धर्म, संयम व सदाचार की पालिश करने के पश्चात् उसे पुनः माता-पिता एवं समाज को वापस दे दिया जाता है। गुरु के यहाँ निर्मित इस चरित्र धन के धनी, अनुपम रत्न को सामान्य मनुष्य की तो बात ही क्या देवता भी देखने आते हैं।

तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः। -अथर्ववेद

यह आर्यावर्त देश प्रारम्भ से ही चरित्र-धन का धनी रहा है। यहाँ गुरुजन डिण्डिमघोष से यह उद्घोष करते थे-"चरित्रांस्ते शुन्धामि" (यजुर्वेद)- हे बालक! मैं तेरे समस्त आचार, विचार एवं व्यवहारों को शुद्ध करता हूँ। यह बात वही कह सकता है जो स्वयं भी चरित्र का धनी, आचार-विचार से शुद्ध और परोपकारी

हो। इन्हीं श्रेष्ठ गुरु, आचार्य एवं विद्वानों के पद-पंजों में आकर विद्या ग्रहण करने तथा चरित्र की शिक्षा लेने के लिए मनु महाराज कहते हैं-

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः।। - मनुस्मृति

अर्थात् समस्त भूमण्डल के लोग इस आर्यावर्तदेश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण, विद्वान, गुरु, आचार्य इत्यादि के चरणों में बैठकर चरित्र की शिक्षा ग्रहण करें। कभी तक्षशिला और नालन्दा जैसे वहुत बड़े-वड़े विश्वविद्यालय थे, जहाँ सहस्त्रों विद्यार्थी देश-विदेश से आकर विद्या पढ़ते थे। इसी ज्ञान-विज्ञान एवं चरित्र-वल के कारण महाभारत तक आर्यों का समस्त भूमण्डल पर चक्रवर्ती साम्राज्य रहा। यहाँ जन्म लेने के लिए मनुष्य तो क्या देवता (विद्वान्) भी लालायित रहते थे।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

- विष्णुपुराण

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का माता-पिता की आज्ञा-पालन व भ्रातृभाव, श्रवण की पितृभक्ति, भीष्म पितामह की ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा, लक्ष्मण का तप, हरिश्चन्द्र की सत्य-निष्ठा, अर्जुन का संयम, महात्मा वुद्ध ओर महावीर स्वामी का अहिंसा प्रेम, महर्षि दयानन्द की वेदों के प्रति निष्ठा और स्वहित से अधिक संसारहित की भावना, शंकराचार्य का ब्रह्मचर्य, वीर बालक हकीकत की धर्मनिष्ठा, नेताजी सुभाष एवं अन्य क्रान्तिकारी वीरों का देशप्रेम चरित्र के अनुपम आदर्श हैं, जिनसे आर्यजाति आज भी मार्गदर्शन प्राप्त कर सकती है।

जैसाकि पूर्व कहा जा चुका है कि चरित्र निर्माण का मूल 'विचार' है। विचार शुद्धि के लिए यह परमावश्यक है कि परमात्मा को सदैव अपने हृदय में विराजमान जानकर उसका चिन्तन करते रहना चाहिए। परमात्मा हमारे मन की सब गतिविधियों को जानता है। वह सर्वत्र व्यापक है। कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ वह विराजमान न हो, अतः सदैव दुर्विचारों का परित्याग करने का प्रयत्न करना चाहिए।

यहाँ यह कहना भी उपयुक्त होगा कि व्यक्ति के अच्छे या बुरे विचार आकाश में फैलकर पुनः वापस आते हैं। जैसे ध्वनि लौटती है, वैसे ही विचारकर्त्ता के अच्छे विचार वातावरण से अन्य शुभ विचारों को साथ लाते हैं, इसी प्रकार कुविचार दुगुने वेग से आक्रमण करते हैं, अतः यथाशक्ति शुभ संकल्प ही करने चाहिएँ। विशेषतः सायंकाल शैय्या पर जाकर अच्छे विचारों का चिन्तन करते हुए सोना चाहिए।

विचारों का व्यक्तिगत रूप में पालन करना आचार कहलाता है। योग के पाँच नियम-**शौच**- अर्थात् बाह्य व आभ्यन्तर शुद्धि - मन में पवित्र विचार, स्नान, शुद्ध वस्त्र पहनना। **सन्तोष** - किये हुए पुरुषार्थ के फल से सन्तुष्ट रहना। **तप**- विद्या और धर्मवृद्धि के लिए सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, मान-अपमान इत्यादि की चिन्ता न करके निरन्तर आगे बढ़ते रहना। **स्वाध्याय**- आत्मा, परमात्मा सम्बन्धी ग्रन्थों को पढ़ना। **ईश्वरप्रणिधान**- सर्वस्व ईश्वरार्पण करना, ये वैयक्तिक चरित्र के उत्कृष्ट साधन हैं। इनके अतिरिक्त प्रातः जागरण, नियमित दिनचर्या, माता-पिता, गुरु एवं वृद्धजनों का सम्मान करना, परिश्रमपूर्वक विद्या पढ़ना, परीक्षा में नकल न करना, मधुर सम्भाषण, अच्छी संगति में बैठना, स्वस्थ मनोरञ्जन, महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ना, सादा जीवन और उच्च विचार आदि अन्य आवश्यक गुण हैं।

सामाजिक चरित्र में पाँच यम-**अहिंसा**- सबसे वैरभाव का त्याग, **सत्य**-यथार्थ बात कहना, **अस्तेय**- चोरी न करना, ब्रह्मचर्य पालन एवं **अपरिग्रह**-आवश्यकता से अधिक संग्रह त्यागना आते हैं।

इसके अतिरिक्त इन बातों पर भी ध्यान देना आवश्यक है-

१- जैसे व्यवहार ही आप दूसरों से आशा रखते हैं, वैसा ही व्यवहार दूसरों के साथ करना चाहिए।

२- अपनी सुख-सुविधा के साथ दूसरों का भी ध्यान रखना आवश्यक है।

३- अपनी स्त्री को छोड़कर अन्य स्त्रियों को माता, बहिन या पुत्री की निगाह से देखना चाहिए।

४- बिना परिश्रम के या अन्याय से धन-प्राप्ति की इच्छा नहीं करनी

चाहिए।

५- वेशभूषा सादगीवाली और सामाजिक परिवेशवाली होनी चाहिए।

६- जब दो व्यक्ति बात कर रहे हों, तब उनके मध्य में जाना, उनकी बातें सुनना और उनकी बात काटकर बोलना अशिष्टता है।

७- सभी दुर्व्यसनों से दूर रहना चाहिए।

८- समय का सदुपयोग, नियत समय पर कार्य करना, नियमबद्धता कार्य-सिद्धि का मूल है।

९- जिससे जो प्रतिज्ञा की हो उसे यथासम्भव पूरा करना चाहिए।

१०- कर्त्तव्यपरायण रहना मानव को उन्नति के चरम शिखर पर पहुँचा देता है।

व्यवहार के लिए अन्य और भी बहुत-से सद्‌गुण हैं, जिनका आचरण मानव जीवन को समुन्नत, सुखी और समृद्ध बनाने में लाभदायक है। इसके साथ ही राष्ट्रिय चरित्र-निर्माण के लिए देशभक्ति, एकता, श्रम का महत्व, समुचित कर (टैक्स) देना, योग्य व्यक्तियों को सरकार में भेजना, राष्ट्ररक्षा इत्यादि गुणों का समावेश होना चाहिए। चरित्र की यह माला विभिन्न सद्‌गुणरूपी रत्नों का गुम्फन करने से ही सुशोभित होती है।

६- देशभक्ति

भारत भूमि का एक नाम देवभूमि है जिसमें जन्म लेने के लियेदेवता भी लालायित रहते थे। स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) दोनों को प्राप्त कराने वाली इस पुण्य धरा के ऋषि-महर्षि और ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान और ईश्वर का साक्षात्कार करने वाले ब्राह्मण गुरुओं के चरणारविन्द में बैठ कर देश-विदेश के लोग आचार-विचार और ज्ञान विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करते थे। नालन्दा और तक्षशिला जैसे विश्व विद्यालय में हजारों विद्यार्थी विविध विद्याओं को पढ़ अपना अहोभाग्य समझते थे। उस समय भारत विश्व गुरु के पद पर आसीन था। समस्त ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का केन्द्र यह भारत देश ही था। सृष्टि के आदि में मानव मात्र को कर्त्तव्य पथ का बोध कराने वाली पवित्र वेदवाणी का ज्ञान चार ऋषियों के हृदय में यहीं पर हुआ।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम और योगेश्वर श्रीकृष्ण जी की क्रीडास्थली भी यही भूमि है। अपने बल से शत्रुओं का मानमर्दन करने वाले अर्जुन, भीम, हनुमान, बालक भरत, राजनीति के चतुर खिलाड़ी आचार्य चाणक्य, चन्द्रगुप्त, मेवाड़ के गौरव महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, रानीदुर्गावती, महारानी लक्ष्मीवाई, छत्रसाल बुन्देला, चन्द्रशेखर आजाद, वीर भगतसिंह, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि नररत्न इसी भारत भूमि की कोख से उत्पन्न हुये हैं जिनका नाम लेकर आज भी हम गर्वोन्नत हो जाते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टि रचयिता ने अवकाश के क्षणों में खूब सोच-विचार कर भारत भूमि का निर्माण किया है। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, ब्रह्मदेश, बंगलादेश आदि सभी बृहत्तर भारत के अंग हैं। यदि हम प्राचीन भारत के मानचित्र को देखें तो इसकी आकृति सिंह जैसी दिखाई देती है। जिसके सिर पर हिमालय का मुकुट सुशोभित हो रहा है। दक्षिण में सागर चरण पखार रहा है। गंगा-यमुना प्रभृति नदियाँ माला के समान सुशोभित हो रही हैं। छः ऋतु, विभिन्न जलवायु और धन-धान्य से भरपूर यह भारतभूमि ऐसी है जिसके सामने स्वर्ग का राज्य भी फीका लगता है। कभी इसे सोने की चिड़िया के नाम से सारा विश्व

जानता था।

सृष्टि की उत्पत्ति त्रिविष्टप (तिब्बत) में हुई जो हिमालय का ही एक भाग है। जब वहाँ पर जनसंख्या बढ़ने लगी तो आर्य गंगा और सिन्ध के मैदान में जंगलों को काट बसते चले गये। इससे पहले इस देश में कोई नहीं बसता था। आर्यों के द्वारा इसे आबाद करने से इसका नाम आर्यावर्त पड़ा और यहाँ रहने वाले सब लोग आर्य कहलाने लगे। महाभारत काल तक आर्यों का चक्रवर्ती राज्य समस्त भूमण्डल पर रहा। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सभी देशों के राजे-महाराजे भेटें लेकर उपस्थित हुये थे।

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' जन्म देने वाली माता और जहाँ हमारा जन्म हुआहै वह मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। इस भूमि माता की धूली में हम घुटनों के बल चले। इसमें उत्पन्न अन्न जल से हमारा पोषण हुआ। भोजन, आवास तथा आजीविका के विविध साधन इसी से प्राप्त हो रहे हैं। इसकी सुगन्धित वायु में हम श्वास ले रहे हैं। अन्त समय में भी यह भूमि माता हमें अपनी गोद में आश्रय देती है तो फिर 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' वेद की इस वाणी को शिरोधार्य कर मातृभूमि का सम्मान क्यों न करें और इसकी रक्षा का व्रत क्यों न लें?

यहाँ एक प्रसंग का वर्णन करना उचित होगा। एक यात्री जा रहा था। उसने देखा कि एक वृक्ष में आग लगी हुई है और उस पर पक्षी निश्चिन्त बैठे हैं। उसने पक्षियों से कहा -

आग लगी इस वृक्ष पर जलने लगे सब पात।
तुम क्यों बैठे पंछियो जब पंख तुम्हारे साथ।।

यात्री की बात सुन पक्षियों ने उत्तर दिया -

फल खाये इस वृक्ष के गन्दे कीने पात।
धर्म हमारा है यही जलें इसी के साथ।।

सबसे बड़ा धर्म राष्ट्र धर्म है। राष्ट्र भक्ति का उदाहरण जापान और इस्रायल से लिया जा सकता है। जापान के विद्यालयों में प्रत्येक बच्चे को यह पढ़ाया जाता है - जापान हमारा देश है। बौद्ध धर्म हमारा राष्ट्रीय धर्म है।

महात्मा बुद्ध हमारे आराध्य हैं। जो हमारे धर्म का अपमान करेगा हम उसे दण्डित करेंगे। जो महात्मा बुद्ध का तिरस्कार करेगा हम उसे भी सजा देंगे परन्तु यदि स्वयं महात्मा बुद्ध सेना लेकर जापान पर आक्रमण करें तो हम उसका भी सिर काट लेंगे। आज यही पाठ भारत के प्रत्येक बच्चे को पढ़ाया जाना चाहिये जहाँ धर्म-सम्प्रदाय, भाषा एवं क्षेत्रवाद की संकीर्ण मनोभावना ने हमारे हृदयों को संकुचित कर दिया है। जिसके लिये महाराणा प्रताप, वीर शिवाजी ने मुगलों से लोहा लिया। सन् १८५७ के क्रान्तिकारी वीरों ने माता के बन्धनों को काटने के लिये अपने प्राणों की भेंट चढ़ा दी। चन्द्रशेखर आजाद शहीद हुये। पं० रामप्रसाद बिस्मिल, वीर भगत सिंह प्रभृति वीरों ने हँसते हुये फाँसी का फन्दा चूमा। नेता जी सुभाष चन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज सजाई। कितनों ने जेलें काटीं। अनेक अत्याचार सहे। कोल्हू चलाये। अत्याचार की यह लम्बी कहानी है। इन्हीं वीरों के गरम खून पर तैरती लन्दन से लालकिले तक यह स्वतन्त्रता की देवी आई है जिसके लिये हमें आजन्म इन देश भक्तों का कृतज्ञ रहना चाहिये।

देश भक्ति से अभिप्राय देश की भौगोलिक सीमा, यहाँ के नागरिक और अपनी संस्कृति का सम्मान करने से है। देश की भौगोलिक सीमा राष्ट्र का शरीर, राष्ट्र के जन प्राण और संस्कृति आत्मा है। यहाँ की चप्पा-चप्पा भूमि की सुरक्षा करना हमारा दायित्व है। राष्ट्रीय एकता के लिये यह आवश्यक है कि विविध जलवायु, भाषा, भेष और खानपान वाले लोगों से हम मिलें और भारत माता के विराट् स्वरूप का दर्शन करें। कभी हमारे धर्माचार्यों ने राष्ट्रीय एकात्मता को बनाये रखने के लिये पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण में चार धामों की स्थापना और हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन तथा नासिक में कुम्भ के मेलों की परम्परा प्रारम्भ की थी। यही कारण था कि सात सौ वर्ष तक मुगलों और दो सौ वर्षों तक अंग्रेजों की दासता में निगडित रहने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से भारत वर्ष एक बना रहा।

जिस स्वतन्त्रता को हमारे पूर्वजों ने प्राणों की आहुति देकर प्राप्त किया उसको अक्षुण्ण बनाये रखना हम सबका कर्त्तव्य है। आज कुछ निहित स्वार्थ वाले लोग, धर्म, सम्प्रदाय भाषा के नाम से इसे बाँटना चाहते है।। हमें यह स्मरण रखना होगा कि राष्ट्र धर्म सर्वोपरि है और अन्य पूजा-पाठ की पद्धति वैयक्तिक

है। सभी भारतीय भाषा अपनी हैं जिनका प्रादुर्भाव संस्कृत से हुआ है। सभी महापुरुष हमारे पूज्य हैं जिन्होंने हमें सन्मार्ग दिखलाया। इस देश में उत्पन्न सभी लोग भारतमाता के पुत्र हैं। यहाँ की नदियाँ, पर्वत, झील सरोवर, वन-उपवन सभी हमारी राष्ट्रीय धरोहर हैं। हमें पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण करने में कोई आपत्ति नहीं है परन्तु अपनी सांस्कृतिक मान्यता एवं परम्परा से विमुख हो जाना हमारे लिये आत्मघाती होगा। जो लोग यहाँ के अन्न-जल से पले हैं और सपने अरब, अमेरिका या चीन के देखते हैं उनकी देशभक्ति सन्देहास्पद है।

कोई देश सम्मान से तभी सिर ऊँचा रख सकता है जब वहाँ के युवक तप और दीक्षा को अपना आदर्श बनायें। भगवती वेदवाणी कहती है-

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदः तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा अभिसंनमुन्तु।।

क्रान्तिदर्शी मनीषियों ने राष्ट्र को बलवान् और तेजस्वी बनाने के लिये तप और दीक्षा को प्राथमिकता दी। किसी अच्छे काम को करने में सुख-दुःख, मान-अपमान, लाभ-हानि की ओर ध्यान न देते हुये उसे पूरा करना तप और जिस अच्छे कार्य का संकल्प लिया है उसे प्रारम्भ करना दीक्षा कही जाती है। जिस देश की युवाशक्ति तपस्वी और दीक्षित होगी वह देश निरन्तर प्रगति पथ पर आगे ही बढ़ता चला जायेगा।

७- स्वास्थ्य रक्षा

मानव जीवन के लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति का साधन स्वस्थ शरीर ही है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है। रोग या दुर्वलता हमारी असावधानी या पापों का फल है। रोगी व्यक्ति स्वयं अपने जीवन को भार समझता है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह हर सम्भव उपाय द्वारा अपने स्वास्थ्य को वनाये रक्खे। युवावस्था के प्रारम्भ में तो इस ओर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि यही समय शरीर की वृद्धि और पुष्टि का है। यदि इस समय असावधानी या शरीर की उपेक्षा की गई तो आगे पश्चात्ताप ही करना पड़ेगा।

स्वास्थ्य की परिभाषा सुश्रुत-संहिता में बहुत ही सारगर्भित और सीमित शब्दों में की गई है-

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थ इत्यभिधयिते।।

जिसके वात, पित्त व कफ तीनों दोष समान हों, जठराग्नि प्रदीप्त, शरीर को धारण करनेवाली धातुएँ-रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य समान अनुपात में हों, मल-मूत्र की प्रवृत्ति समुचित रूप में होती हो, जिसकी इन्द्रियाँ, मन और शरीर का स्वामी आत्मा भी प्रसन्न हो, ऐसे व्यक्ति को स्वस्थ कहते हैं। यहाँ शरीर के साथ, मन, बुद्धि और आत्मा इन सबके स्वास्थ्य की ओर संकेत किया है।

कहते हैं कि आयुर्वेद के उद्भट विद्वान् आचार्य चरक ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का विचार किया। विद्यालय से अवकाश होने पर विद्यार्थी गप-शप करते हुए अपने छात्रावास की ओर जा रहे थे। आचार्य महोदय मार्ग के समीप विद्यमान पुराने वृक्ष के कोटर में छिपकर बैठ गये और अस्पष्ट स्वर में प्रत्येक गुजरनेवाले छात्र से यह प्रश्न पूछा-कोऽरुक्, कोऽरुक्, कोऽरुक्? कौन रोगी नहीं, अर्थात् स्वस्थ कौन है? इन्हीं छात्रों में एक प्रबुद्ध छात्र वाग्भट्ट भी था। उसने

इस वाक्य को ध्यान से सुना और तुरन्त उत्तर दिया-हितभुक्, मितभुक्, ऋतभुक्। जो व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुकूल, ऋतु अनुसार, मात्रा में भोजन करता है, वही स्वस्थ है। इन्हीं आचार्य ने स्वस्थ रहने के लिए आगे कहा-

नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी व्यसनेष्वसक्तः।
दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।।

जो नित्यप्रति हितकारी आहार-विहार का सेवन करता है, प्रत्येक कार्य उसके परिणाम पर विचार करके करता है, जो विषयों और व्यसनों में आसक्त नहीं है, दानशील है, सुख-दुःख में समानभाव से रहता है, सत्यपरायण और क्षमाशील है एवं जो शास्त्रों के ज्ञाता सदाचारी विद्वानों का सत्संग करता है वह कभी भी रोगी नहीं होता, अर्थात् सदा स्वस्थ रहता है। इन बातों पर क्रमशः विचार करते हैं-

१-**आहार**- हमारे जीवन में भोजन का मुख्य स्थान है। आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य ये तीनों शरीर को धारण करनेवाले उपस्तम्भ (खम्भे) हैं। सुन्दर स्वास्थ्य के लिए इन तीनों पर ध्यान देना आवश्यक है। प्राणियों के प्राण, वर्ण, वाणी, जीवन, बुद्धि, सुख, प्रसन्नता, पुष्टि, बल, पराक्रम आदि सभी भोजन पर अवलम्बित हैं।

आहार के कार्य :

भोजन के मुख्यतः चार कार्य हैं-

(क) **क्षतिपूरण**- हमारे शरीर की विविध क्रियाओं के कारण बहुत-सी कोशिकाएँ नष्ट होती रहती हैं। ये नष्ट हुई कोशिकाएँ मल, मूत्र, थूक, स्वेद इत्यादि द्वारा शरीर से विसर्जित होती रहती हैं और इनका स्थान नवीन कोशिकाएँ ले-लेती हैं। इन कोशिकाओं का निर्माण भोजन द्वारा गृहीत प्रोटीन तथा खनिज लवणों द्वारा होता है।

(ख) **धातु बृंहण**- नवजात शिशु का भार २-४ किलो और लम्बाई १८-(इंच होती है। आगे जाकर युवावस्था में यही शिशु ७५-१०० किलो भार और ६०-७० इंच लम्बाई वाले युवा में परिवर्तित हो जाता है। इस परिवर्तन एवं

परिवर्धन में भोजन ही मुख्य कारण है। शरीर में प्रतिदिन होनेवाली क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त रसादि सातों धातुओं की वृद्धि करना भोजन का दूसरा कार्य है। यह कार्य प्रोटीन, श्वेतसार और वसायुक्त खाद्यपदार्थ करते हैं।

(ग) **उष्णता स्थापन-** किसी भी देश या जलवायु में मनुष्य के शरीर का तापमान सामान्यतः ९८.४ डिग्री वना रहता है। इस उष्णता को श्वेतसार तथा वसायुक्त भोजन वनाये रखते हैं।

(घ) **ऊर्जा (शक्ति) सम्पादन-** प्राणियों का शरीर एक जीवित यन्त्र है। जैसे विद्युत् उत्पादक यन्त्र में ईंधन डालने से ऊर्जा (विद्युत्) का उत्पादन होने लगता है, ठीक वैसे ही प्राणियों द्वारा गृहीत अन्न का शरीर में ज्वलन (oxidation) होकर उष्णता और ऊर्जा की उत्पत्ति होती है। यही ऊर्जा शरीर को विविध कार्य करने की शक्ति प्रदान करती है। ऊर्जा उत्पन्न करनेवाले खाद्य पदार्थ श्वेतसार, शर्करा एवं वसा (चिकनाई) हैं।

इनके अतिरिक्त खनिज, लवण एवं विटामिन शरीर की वहुत-सी क्रियाओं को सुचारु रूप में बनाये रखते हैं। इनके अभाव में शरीर रोगी हो जाता है।

आहार का उद्देश्य केवल शरीर-निर्माण करना एवं उसे गतिशील वनाये रखना ही नहीं है। जैसे दूध के सारभाग (मक्खन, क्रीम) को दूध मथकर प्राप्त करते हैं, वैसे ही अन्न का पाचन होकर उसके सूक्ष्मभाग से हमारे मन का निर्माण होता है। कहावत भी है-'जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन'। इसलिए हमें खाते समय प्रोटीन, विटामिन, श्वेतसार, वसा या अन्य आवश्यक तत्वों के अतिरिक्त यह भी विचार करना चाहिए कि इन खाद्य पदार्थों की प्रकृति सात्विक, राजसिक, तामसिक किस प्रकार की है। राजसिक और तामसिक पदार्थों के सेवन से मन-बुद्धि विकृत हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं।

भोजन के आवश्यक नियम :

ताज़ा भोजन करने से उचित मात्रा में पाचक रस की उत्पत्ति होकर उसका पाचन भली-भाँति होता है तथा वातादि दोष भी शान्त होते हैं।

(क) पहले किये हुए भोजन के पच जाने पर ही अगला भोजन करना चाहिए। कम-से-कम पाँच घण्टे का अन्तर दूसरे भोजन में होना चाहिए। अल्पाहार

लेने के पश्चात् भी तीन घण्टे के अन्तर से भोजन करना उचित है। इन दोनों के मध्य में जल को छोड़ अन्य कोई खाद्य पदार्थ नहीं लेना चाहिए। प्रातःकाल अल्पाहार, मध्याह्न में भोजन, सायंकाल पेय पदार्थ और रात्रि में पुनः भोजन करना उचित है। दो बार ही पेट भरकर खाने की अपेक्षा चार बार स्वल्प मात्रा में भोजन करना लाभदायक है।

(ख) आमाशय का आधा भाग अन्न से, चतुर्थांश पेय पदार्थों से और शेष भाग सुखपूर्वक श्वास-प्रश्वास लेने तथा भोजन को सरलता से उदर में गति करने के लिए छोड़ देना चाहिए।

(ग) भोजन खूब चवाकर खाना चाहिए। चबाने से मुख की लार भोजन में मिलकर श्वेतसार का पाचन कर देती है। अन्यथा दाँतों का कार्य आँतों को करना पड़ता है।

(घ) शान्त चित्त एवं प्रसन्न होकर सुन्दर, स्वच्छ स्थान पर भोजन करने से उसका पाचन सरलता से होत्ता है। गप-शप, हँसी-'मज़ाक और क्रोध-शोक की स्थिति में भोजन करना हानिकारक है।

(ङ) अपनी प्रकृति एवं मन के अनुकूल भोजन करने से शरीर स्वस्थ रहता है। 'रुचे सो पचे'। युवावस्था में उष्ण-प्रकृति के खाद्य पदार्थ-मिर्च, मसाले, तेल, खटाई, चाय, काफी, प्याज़, लहशुन आदि का परित्याग करना ही श्रेयस्कर है। अन्यथा इनसे शरीर में अनावश्यक उष्णता एवं उत्तेजना होकर बल-वीर्य की क्षीणता होती है।

(च) व्यायाम तथा स्नान के आधा घण्टा पश्चात् भोजन और भोजन के तीन घण्टे पश्चात् व्यायाम करना चाहिए। सायंकाल का भोजन सोने से २-३ घण्टे पहले करना उचित है।

(छ) मध्याह्न के भोजन के पश्चात् दाहिने, सीधे और बायें लेटकर कुछ समय विश्राम करना या वज्रासन में वैठना चाहिए। सायंकाल भोजन करके कुछ भ्रमण या मनोरञ्जन करना उपयोगी है। भोजन के तुरन्त वाद शारीरिक या मानसिक श्रम वर्जित है।

(ज) पानी भोजन के पश्चात् पीने से पाचकरस हलके होकर भोजन का पाचन सम्यक् रूप में नहीं हो पाता, अतः एक घण्टे पश्चात् थोड़ा-थोड़ा करके

पानी पीना चाहिए। यदि रूक्ष भोजन है या प्यास वहुत अधिक है तो मध्य में कुछ पानी पी सकते हैं।

(झ) रात्रि के पश्चात् उषःपान (जल पीना) भोजन के पश्चात् तक्र (छाछ) और दिन के पश्चात् अर्थात् रात्रि में दूध पीना आयुवर्धक है।

अभक्ष्य पदार्थों का परित्याग

वुद्धि को लुप्त करनेवाले मद्यादि, राजसिक और तामसिक अण्डे, मांस, तम्वाकू, अफीम इत्यादि अभक्ष्य पदार्थ हैं। मनुष्य मूलतः शाकाहारी है। उसके दाँत, आँतों की रचना तथा पाचक रसों का स्राव मांसाहारियों से भिन्न श्रेणी का है। मांसाहार में अधिकांश में प्रोटीन होता है। अधिक मात्रा में लिया गया प्रोटीन यूरिक एसिड तथा यूरिया में परिवर्तित होकर गठिया, वात-विकार, धमनी-काठिन्य तथा हृदय-रोगों की उत्पत्ति करता है। उसी प्रकार अण्डों के सेवन से रक्त में कोलेस्ट्रोल वढ़कर हार्ट अटैक की सम्भावना वढ़ जाती है। मांस प्राप्त करने के लिए जीव-हिंसा करनी पड़ती है। पशुओं के संस्कार, रोग एवं अन्य विष भी मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होकर अनेक रोगों का कारण वनते हैं। मांस खाने से शक्ति वढ़ती है, यह भी केवल भ्रम है। संसार के सबसे शक्तिशाली प्राणी हाथी, गैण्डा, भैंसा, बैल इत्यादि शाकाहारी ही हैं। मांस खाने से केवल मांस ही बढ़ता है, प्राणशक्ति नहीं। प्राणशक्ति के लिए अंकुरित अन्न, ताज़ा दूध, स्वच्छ पानी, फल, शाक-सब्जी, अन्न, दाल तथा मेवों का सेवन करना हितकर है।

२-विहार - जिसकी दिनचर्या ठीक नहीं है, उसका स्वास्थ्य कैसे ठीक रह सकता है? उत्तम स्वास्थ्य के लिए प्रातः चार बजे ब्राह्म-मुहूर्त्त में उठकर उषःपान, शौच, दन्तधावन के पश्चात् यथाशक्ति व्यायाम, भ्रमण करके स्नान, सन्ध्या, सत्संग, स्वाध्याय करना चाहिए।

जो युवक देर तक सोता रहता है उसके तेज, वल और बुद्धि क्षीण हो जाते हैं। स्वप्नदोषादि विकार प्रायः देर तक सोनेवालों को ही होते हैं। प्रातःकाल शुद्ध और शीतल वायु में भ्रमण व व्यायाम करने से व्यक्ति दिनभर तरोताज़ा बना रहता है। रात्रि में १० बजे सोकर प्रातः ४ बजे उठने का नियम प्रत्येक युवक को

बना लेना चाहिए। रात को देर तक जागते रहना और प्रातः देर तक सोना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

उत्तम स्वास्थ्य के लिए व्यायाम अत्यावश्यक है। व्यायाम के विभिन्न प्रकारों में प्रातः आसन, प्राणायाम, भ्रमण, दौड़, स्फूर्तिदायक व्यायाम, दण्ड-बैठक, कुश्ती इत्यादि और हलके खेलों का अभ्यास करना चाहिए। सायंकाल भारी व्यायाम और स्पर्धात्मक खेल खेलने चाहिएँ। बिना व्यायाम के ब्रह्मचर्य रक्षा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। व्यायाम से शरीर में भोजन द्वारा वनने वाली शक्ति का सही उपयोग होकर शरीर बलिष्ठ, सुन्दर, स्फूर्तियुक्त और सुगठित बन जाता है। सारे शरीर में रक्त-सञ्चार होकर रक्त शुद्ध हो जाता है। मस्तिष्क में शुद्ध रक्त जाने से वह भी अधिक सक्रियता से कार्य करने लगता हैं। मुटापे को दूर करने में व्यायाम से बढ़कर और कोई साधन नहीं है। नित्यप्रति व्यायाम करने से दुर्वल और कुरूप व्यक्ति भी सुन्दर और सुगठित शरीरवाला बन जाता है। हृदय-रोग, मधुमेह, मोटापा, वातव्याधि, गैस, अजीर्ण इत्यादि रोगों का मुख्य कारण शारीरिक श्रम का अभाव ही है। व्यायाम करने से पहले यदि तैल मालिश भी कभी-कभी कर ली जाए तो और भी अच्छा है। किसी भी व्यक्ति को अपने वल का आधा ही व्यायाम करना हितकर है। जव मुख सूखने लगे, मुख से श्वास लेने की इच्छा हो, दम फूलने लगे, मस्तक, छाती और बगल में पसीना आ जाए तो समझो कि आधा वल लग चुका।

व्यायाम के पश्चात् जव शरीर का पसीना सूख जाए, श्रान्ति दूर होकर श्वसन क्रिया सामान्य हो जाए तब लघुशंका करके शीतल और ताज़ा जल से स्नान करना चाहिए। इससे शरीर का मल दूर होकर ताजगी, प्रसन्नता और श्रान्ति का निवारण होकर स्फूर्ति आती हैं यदि कभी गर्म जल से स्नान करना पड़े तो सिर पर गर्म जल न डालकर ग्रीवा से नीचे के शरीर पर डालें। गर्म जल से स्नान करने से दृष्टि शक्ति मन्द तथा वाल भी असमय में ही श्वेत हो जाते हैं। नज़ला, जुकाम का भय बना रहता है। वीर्यादि धातुओं में क्षीणता आती हैं स्नान करते समय पहले शीतल जल सिर पर डालना चाहिए। इसके पश्चात् सारे शरीर पर डालकर शरीर का घर्षण हाथों या खद्दर के तौलिये से करना चाहिए, साबुन

के स्थान पर मुलतानी मिट्टी या उवटन का प्रयोग करना अधिक लाभदायक है। नदी, तालाव, वावड़ी में तैरना सर्वोत्तम है।

स्नान के पश्चात् सन्ध्या, यज्ञ, सत्संग, स्वाध्याय यथाशक्ति करना चाहिए। इनसे मन, वुद्धि और आत्मिक स्वास्थ्य वना रहता है। इसके पश्चात् प्रातराश या अल्पाहार करके अपने दैनिक कार्यों- अध्ययन, कृषि, व्यापार, सेवा इत्यादि में लग जाना चाहिए। प्रतिदिन इसी भाँति नियमित दिनचर्या का पालन करने से मानसिक शान्ति और आरोग्य की वृद्धि होती है। दैनिक कार्यों को शास्त्रोक्त, सज्जन पुरुषों के आचार के अनुकूल और स्वयं विचार करके करना चाहिए।

निद्रा - समय पर सोना और प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त्त में उठना वल वुद्धिवर्धक है।

ब्रह्मचर्य- आहार और निद्रा के पश्चात् तीसरे स्तम्भ ब्रह्मचर्य की किञ्चित् चर्चा करनी उपयोगी है। अपने शरीर की शक्ति को शरीर में सुरक्षित रखकर विद्याध्ययन और ईश्वर की भक्ति करना ब्रह्मचर्य कहलाता है ब्रह्मचारी से रोग तो क्या मृत्यु भी दूर भागती है। जैसे तिलों में तेल विद्यमान है, वैसे ही शरीर का सारभाग वीर्य सारे शरीर में रहता हुआ भी १४ वर्ष पश्चात् प्रकट होने लगता है। यह २५ वर्ष तक वृद्धि को प्राप्त होता रहता है। यही समय इस अमूल्य रत्न को सँभालकर रखने का है। इस समय इस ओर ध्यान न देकर विषयों में फँस गये तो फिर सारा जीवन नीरस और दुःखदायी बन जाएगा। जवानीरूपी इस रत्न को सुरक्षित रखने के लिए ब्रह्मचर्य के साधन-प्रातः जागरण, नियमित व्यायाम, प्राणायाम, सन्ध्या, सत्संग, स्वाध्याय का श्रद्धा से पालन करना चाहिए। इसके बाधक अश्लील चलचित्र, गीत, स्त्रियों का चिन्तन, क्रीड़ा, हास-परिहास, एकान्त सेवन तथा रजोगुणी एवं तमोगुणी पदार्थों का परित्याग करना चाहिए। सब सुधारों का सुधार ब्रह्मचर्य है। जो पूर्ण ब्रह्मचारी है उसके लिए संसार की कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है।

मानसिक स्वास्थ्य :

शरीर और जीवात्मा के संयोग का नाम ही जीवन है। इससे यह सिद्ध हुआ

कि केवल शरीर के स्वस्थ होने और मन, बुद्धि तथा आत्मा के अस्वस्थ रहने पर व्यक्ति को पूर्ण स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। रोग पहले मानसिक पृष्ठभूमि में उत्पन्न होता है। मन के स्वस्थ रहने पर बहुत-से शारीरिक रोगों के लक्षण भी स्वतः लुप्त हो जाते हैं। हृदयरोग, रक्तचाप, मधुमेह, दमा, नपुंसकता आदि अनेक रोगों में मानसिक असन्तुलन ही प्रधान कारण है।

मानसिक रोगों की उत्पत्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या, असूया (चुगली), निन्दा, अहंकार इत्यादि के कारण होती है। इनका कारण पूर्वजन्म के कुसंस्कार, असन्तुलित वातावरण और अविद्या है। रजोगुण और तमोगुणों की वृद्धि होने से भी पुरुष किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता है। अविद्या और अन्धविश्वास की पृष्ठभूमि में ही राग, द्वेष, अस्मिता और अभिनिवेश (मृत्युभय) क्लेशों के अंकुर उगते हैं। विषयों का ध्यान करने से उनमें आसक्ति, आसक्ति से काम-वासना, वासना की पूर्ति में बाधक वस्तु के प्रति द्वेष या क्रोध का भाव, क्रोध से विवेक-बुद्धि और स्मृति का नाश होने से मनुष्य का भी सर्वनाश हो जाता है।

मानसिक रोगों की चिकित्सा :

आचार्य चरक के अनुसार सद्वृत्त (सूत्र १-८) अर्थात् सदाचारी पुरुषोंजैसा आचरण करने से इन दोषों की शान्ति होती है। देव, विद्वानों की संगति, उनके वचनों में श्रद्धा, गुरु, आचार्य एवं वृद्धजनों की सेवा, सत्कार, अग्निहोत्र, सत्संग, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना, भजन, कीर्तन, धर्म का आचरण, सत्य-भाषण, दान, क्षमा, धैर्य इत्यादि के द्वारा मानसिक रोगों का शमन करे। बुद्धि को विलुप्त करनेवाले तमो बहुल खाद्य-पदार्थों को न खाये, क्योंकि आहारशुद्ध होने से ही बुद्धि शुद्ध होती है।

काम को संकल्प (विषयों के चिन्तन के परित्याग) से जीते। जैसे अग्नि में घृत डालने से वह और भी प्रदीप्त होती है, वैसे ही विषयों के चिन्तन या भोगने से उनके प्रति आसक्ति और भी बढ़ती है। प्रजननेन्द्रिय और उदर की धैर्य से रक्षा (विषयों से निवारण) करे। नेत्रों की सहायता से हाथ-पैरों को अपवित्र कार्यों

में जाने से रोके। मन से विचारकर नेत्र और कानों को उनके विषयों में प्रवृत्त होने से मना करे। उत्तम कर्म के द्वारा मन और वाणी की रक्षा करे। क्रोध को शम (शान्ति), धैर्य और क्षमा से वश में करे। लोभ को सन्तोष से वश में करे। दान देने का स्वभाव बनाये। अप्रमाद (सावधानी से भय को जीते और विवेक वैराग्य से मोह (आसक्ति) को नियन्त्रित करें (महा॰ शा॰ अ॰ २७४)। सब प्राणियों को अपने समान समझना और संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर हैं, यह विचारकर उन्हें छोड़ दे और आत्मा को परमात्मा के ध्यान में लगाए।

इन पूर्वोक्त आचरण के नियमों का पालन करने से मनुष्य को पूर्ण स्वास्थ्य की प्राप्ति होकर पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं।

८- बुद्धि

मनुष्य और पशु में यही मुख्य भेद है कि मनुष्य को परमात्मा ने बुद्धिमान् बनाया है। पशुओं को इतनी ही बुद्धि दी है जिस से वे अपना भोजन, वंशवृद्धि और यथाशक्ति अपनी सुरक्षा कर सकें। जहाँ पशुओं को अपनी रक्षा के लिये दाँत, सींग और नाखून दिये हैं वहाँ मनुष्य उनके सामने लाचार है। परन्तु अपने बुद्धि बल से उसने समस्त प्राणियों को अपने वश में कर लिया है। आकाश में पक्षियों की भाँति उड़ने वाले विमान, समुद्र में जलयान और भूमि पर दौड़ने वाले विभिन्न वाहन सभी बुद्धि की देन है।

बुद्धि हमें वंश परम्परा से मिलती है जिसकी वृद्धि होना सम्भव नहीं है। हाँ उचित खानपान, वातावरण और अभ्यास द्वारा इसकी कार्यशक्ति को पर्याप्त सीमा तक बढ़ाया जा सकता है। आज का शरीर विज्ञान कहता है कि मानव मस्तिष्क में १५ करोड़ न्यूरोन (ज्ञान तन्तु) विद्यमान हैं और बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी उसका दशवाँ भाग ही उपयोग में लाता है। मस्तिष्क के बायें गोलार्ध में विभिन्न कार्यों के लिये केन्द्र हैं। दाहिना गोलार्ध, प्रेम, करुणा मैत्री और सद्भावों का केन्द्र माना जाता है जिसके विषय में अभी पूरी जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। सम्भवतः यह क्षेत्र आत्मा-परमात्मा या स्वानुभूति के लिये सुरक्षित किया है

जिसका पूरा उपयोग केवल योगी ही करने में समर्थ है। योगाभ्यास में जब सम्प्रज्ञात समाधि की स्थिति होती है तो ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। यह प्रज्ञा वस्तु का सीधा ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ है। इसमें व्यवधान बाधक नहीं बनता।

मन, बुद्धि चित्त, अहंकार आन्तरिक इन्द्रिय या अन्तःकरण चतुष्टय कहलाते हैं जिनसे आत्मा, ज्ञान प्राप्त करता है। संकल्प-विकल्प अर्थात् यह करूँ या नहीं करूँ, यह मन का कार्य है। यही करना उचित है इसका निर्णय बुद्धि करती है। इन्द्रियों का विषयों से सम्बन्ध मन करता है और तदाकार हो उनका ज्ञान बुद्धि करती है। जो ज्ञान बुद्धि द्वारा होता है उसे सम्भाल कर रखना चित्त का कार्य है बुद्धि से प्राप्त ज्ञान को चित्त में संग्रहीत करना और उसे बुद्धि पटल पर लाना अहंकार का कार्य है। कार्य भेद से इसे चार भागों में विभक्त किया है। सामान्य रूप में इसे बुद्धि के नाम से ही जाना जाता है। बुद्धि, स्मृति, प्रज्ञा, मेधा आदि इसके अवान्तर भेद हैं।

बुद्धि के सात गुण-

सुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा।
ऊहापोहार्थ विज्ञाने तत्त्व ज्ञानं च धी गुणाः।

(कामन्द० नीति सार)

१- **सुश्रूषा** - सुनने की इच्छा होना।

ज्ञान की प्राप्ति पढ़ने और सुनने से ही होती है। सर्वप्रथम विद्वानों से ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करने के लिये ध्यानपूर्वक सुनना आवश्यक है।

२- **श्रवण** - जो विषय बताया जा रहा है उसे एकाग्र चित्त होकर सुनना।

३- **ग्रहण** - सुने हुये विषय को समझ कर मन में बिठा लेना।

४- **धारण** - सुने हुये विषय को बहुत समय तक स्मरण या धारण किये रहना। इसे मेधा या धारणावती बुद्धि कहते हैं।

५- **ऊहापोह**- तर्क-वितर्क करना।

६- **अर्थ विज्ञान**- अभिप्राय को समझना।

७- **तत्त्व ज्ञान** - किसी विषय के सार को तुरन्त समझ लेना।

बुद्धि विकास के उपाय

जैसा कि पहले कहा जा चुका है अभ्यास से बुद्धि की कार्यशक्ति बढ़ाई जा सकती है। निम्न उपायों से बुद्धि की कार्यशक्ति में वृद्धि होगी -

१- **सात्विक भोजन** - द्वान्दोग्योपनिषद् में कहा है-

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

स्मृति लम्भे सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।। (७।६)

सात्विक भोजन से सत्त्व (बुद्धि) निर्मल होती है। बुद्धि के ठीक रहने पर स्मरणशक्ति स्थिर हो जाती है। कोई बात विस्मृत नहीं होती। स्मृति के स्थिर होने पर अज्ञान की सभी ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। सात्विक आहार कौन सा है इसका वर्णन गीता में किया है -

आयुःसत्त्व बलारोग्य सुख प्रीतिविवर्धनाः।

रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विक प्रियाः।। १७/८

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले, रस युक्त, स्निग्ध और शरीर को स्थिरता प्रदान करने वाले अन्न, दाल, फल, मेवा, मीठे पदार्थ, घृत, दूध, शाक सब्जी आदि सात्विक श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

कुछ ओषधियाँ भी बुद्धिवर्धक हैं-

१- शंखपुष्पी का चूर्ण २-३ ग्राम, काली मिर्च मिलाकर दूध के साथ सेवन करें।

२- शंखपुष्पी चूर्ण १ ग्राम, ब्राह्मी का चूर्ण १ ग्राम काली मिर्च ३ नग दूध के साथ सेवन करें अथवा इनका शर्बत बना कर लें।

३- गिलोय का स्वरस या मुलहटी का चूर्ण दूध के साथ लेना चाहिये।

४- बादाम के बीज १०, काली मिर्च-५ सायंकाल जल में भिगो दें। प्रातः छिलका उतार कर सिलबट्टे या मिक्सी में घोटकर जल मिला कपड़े से छान मीठा मिला कर पीयें। सर्दी की ऋतु में दूध के साथ ले सकते हैं। अथवा जो बादाम की लुगदी बने उसे २० ग्राम घी में छोंक लगा कर चाट लें और ऊपर से गर्म करके ठण्डा किया दूध पीयें।

५- आयुर्वेदिक औषध सारस्वत चूर्ण, ब्राह्म-रसायन, स्मृतिसागर रस भी बुद्धिवर्धक है।

२- **संयम** -

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।। (गीता २।५८)

जब यह पुरुष कछुवे की भाँति इन्द्रियों को विषयों से हटा लेता है तब उसकी बुद्धि स्थित है यह समझना चाहिये। जब मन और बुद्धि विषयों की ओर आकर्षित न होकर स्थिर हो जाती है तो फिर इसे इच्छित लक्ष्य की ओर लगाया जा सकता है। जैसे चमड़े के पात्र में यदि कोई छिद्र हो जाये तो उसमें भरा हुआ तरल पदार्थ बून्द-बून्द करके स्रवित हो जाता है वैसे ही जो व्यक्ति एक भी इन्द्रिय का दास है उसकी मतिभ्रष्ट हो जाती है।

३- **प्राणायाम** -

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। (योग दर्शन)

प्राणायाम के अभ्यास से बुद्धि पर छाया तमोगुण का आवरण क्षीण हो ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। विद्यार्थियों के लिये ब्राह्य प्राणायाम और अनुलोम-विलोम एवं नाड़ीशुद्धि उपयुक्त हैं।

४-**प्रातः जागरण** - अंग्रेजी में एक कहावत है - *'Early to bed and early to rise makes a man healthy, wealthy and wise'* प्रातःकाल शीघ्र उठ कर जो व्यायाम करता है वह वलवान, धनार्जन करने वाला धनवान और पढ़ने वाला बुद्धिमान् वन जाता है। जो विद्यार्थी प्रातः ब्राह्म मुहूर्त्त में सोता रहता है, उगते सूर्य की किरणें उसके वल, पराक्रम और वुद्धि का हरण कर लेती हैं। इसलिये सायंकाल को जल्दी सोना और प्रातःकाल ब्राह्म मुर्हूत में उठने का नियम बना लेना चाहिये।

५-**सत्संग, स्वाध्याय** - बुद्धि का निर्माण वंशानुगत और वातावरण दोनों से होता हैं अच्छे लोगों की संगति में रहने से सद्बुद्धि और दुर्जनों के संग से बुद्धि मलिन हो जाती है। भतृहरि जी कहते हैं - जाड्यंधियो हरति-

सत्संगति वुद्धि की जड़ता को दूर करती है। इसी भाँति अच्छे ग्रन्थों का स्वाध्याय करने से भी वुद्धि का विकास होता है।

६-**प्रसन्नता** - मन के प्रसन्न रहने पर सर्व दुःखों की निवृत्ति और प्रसन्न

चित्त वाले की बुद्धि स्थिर हो जाती है।

७-**जप**- ओंकार या गायत्री का जप ध्यान को भृकुटि में जमाकर करने से भी बुद्धि तीव्र होती है। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नानादि के पश्चात् गायत्री का जप किया जा सकता है।

८-सुश्रुत संहिता में बुद्धि की धारण करने की क्षमता को बढ़ाने वाले उपाय बताये हैं -

सततताध्ययनं वादः परतन्त्रावलोकनम्।
तद्विदाचार्य सेवा च बुद्धि मेधाकरो गणः।।

विषय से सम्बन्धित ग्रन्थों का नित्य अध्ययन, चर्चा, विषय से सम्बन्ध रखने वाले दूसरे सहायक ग्रन्थों का अवलोकन एवं विषय के जानने वाले विद्वानों की संगति करने से बुद्धि की धारण करने वाली शक्ति बढ़ जाती है।

स्मृति

जो बात पहले सीखी जा चुकी है उसे स्मरण रखने का नाम स्मृति है। इसके तीन अंग हैं।

१-**सीखना** (Learning) किसी बात को भली भाँति याद रखने के लिये उसे पहले ठीक प्रकार से सीखना या समझ लेना आधी से अधिक लड़ाई जीत लेता है।

२-**धारण करना** (Retention) जो हम सीखते हैं वह कुछ समय के पश्चात् अचेतन मन (चित्त) में संस्कार रूप में सञ्चित हो जाता है। कोई बात कितने समय तक चित्त में संचित रह सकती है यह व्यक्ति की धारणात्मक शक्ति (धृति) पर निर्भर करता है। धारणा शक्ति को बढ़ाने के लिये निम्न सूत्र उपयोगी हैं -

- अच्छा स्वास्थ्य
- अच्छी प्रकार सीखना
- पुनरावृत्ति या बार-बार दोहराना
- मन को एकाग्र कर रुचि से सीखना
- याद रखो- कठिन विषय की अपेक्षा सरल एवं रोचक बात अधिक समय तक स्मरण रहती है।

३- **पुनः स्मरण** (Re call) आपने एक विषय को पूरा याद किया है परन्तु परीक्षा के समय उसे भूल गये हैं तो सारा परिश्रम व्यर्थ चला जाता है। इसलिये सीखे हुये विषय को पुनः स्मृति पथ पर लाने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इसके लिये निम्न सूत्र उपयोगी हैं -

१- **आदत डालना**- किसी विचार को बार-बार दोहराने से वह आदत में परिणत हो जाता है। जैसे आपने बच्चों को पहाड़े और गिनती बोलते देखा होगा। बचपन की यह मेहनत सारा जीवन काम आती है।

२-**निरन्तरता**- जिन विषयों का विशेष महत्त्व है उन्हें निरन्तर दोहराते रहने से कालान्तर में उसकी गहरी छाप पड़ जाती है। किसी भी विषय के मुख्य बिन्दुओं को चिन्हित कर उन्हें स्मरण करना और उनकी पुनरावृत्ति निरन्तर करते रहना चाहिये।

३- **परस्पर सम्बन्ध** - विषय को स्मरण रखने के लिये एक घट्ना या बिन्दु का दूसरे के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेने से स्मरण रखना सरल हो जायेगा।

इनके अतिरिक्त निम्न बातें भी सहायक हैं :-

- रुचि का होना, - एकाग्रता, - शरीर एवं मन का थकान रहित होना, - आत्मविश्वास या दृढ़ निश्चय, - सकारात्मक चिन्तन, - संवेगों (काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, मोह) का नियन्त्रण?, - पूर्ण विश्राम, गाढ़ निद्रा, - समुचित व्यायाम, - सन्तुलित भोजन

परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के सूत्र-

१- तीव्र इच्छा, २-कठोर परिश्रम, ३-आज के काम को कल पर नहीं छोड़ना, ४-चर्चा, ५- लिखना, ६- महत्वपूर्ण बिन्दुओं को रेखांकित कर उन्हें स्मरण रखना, ७-दूसरों को पढ़ाना, ८-स्पर्धा, ९-भाषा पर अधिकार, १०-सुलेख।

स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये योगाभ्यास

आसन-शीर्षासन, सर्वांगासन, पश्चिमोत्तानासन, वृक्षासन, पादांगुष्ठासन।

ध्यान के आसन- सिद्धासन, पद्मासन, वज्रासन, **योगमुद्रा**-सामान्य रूप में सभी आसन नाड़ी तन्त्र को शान्त रखने में सहायक हैं। जब मस्तिष्क शान्त

रहेगा तो स्मरण शक्ति में वृद्धि होगी ही।

क्रिया - जलनेति, कपाल भाति, त्राटक, नासाग्र दृष्टि, भ्रूमध्यदृष्टि।

मुद्रा- ज्ञानमुद्रा - अंगूठे और तर्जनी के अग्र भाग को मिलाने से धन और ऋण विद्युतप्रवाह मिल कर रक्त को मस्तिष्क की ओर अधिक मात्रा में सञ्चालित करता है तथा मस्तिष्क को आक्सीजन की पर्याप्त आपूर्ति होती है। स्मरण रहे ग्लूकोज और आक्सीजन का तृतीय भाग केवल मस्तिष्क को ही चाहिये। ज्ञान मुद्रा, शीर्षासन, सर्वांङ्गासन इसमें सहायक हैं।

ध्यान - नासिकाग्र या भ्रूमध्य में मन को एकाग्र कर श्वास-प्रश्वास का निरीक्षण करना, गायत्री मन्त्र या ओ३म् का जप अथवा भृकुटि में ज्योति दर्शन करने से मन शान्त और ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। ध्यान से मन शान्त हो जाता है। योगी ही अपनी समग्र वुद्धि का प्रयोग कर आत्मा-परमात्मा और प्रकृति के सूक्ष्म रहस्यों को जान सकता है।

६- आर्यवीर-दल इतिहास के झरोखों से

किसी भी राष्ट्र, जाति और संस्था का इतिहास उसका आधार-स्तम्भ होता है। भावी पीढ़ी उससे प्रेरणा लेकर कर्त्तव्य-पथ पर आगे वढ़ती हैं परिस्थितिवश दैन्यावस्था में आ जाने पर भी उसका मनोबल नहीं गिरता और वह पुनः अंगड़ाई लेकर खड़ी हो जाती है। इसके विपरीत इतिहास को विस्मृत करके समृद्ध लोग भी मार्गदर्शक एवं आदर्श उपस्थित न होने से किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। किसी का मानस बदलना है तो उसके पूर्वजों के इतिहास में उलट-फेर करके उन्हें अयोग्य घोषित कर दिया जाए तो उस राष्ट्र या जाति का मनोबल गिरने में देर नहीं लगेगी।

आर्यवीर-दल की स्थापना

ऋषि दयानन्द के क्रान्तिकारी अभियान से पौराणिक हिन्दू, मुसलमान एवं

अन्य मतावलम्बियों में खलबली मच गई। वे सभी एकमत होकर इस क्रान्ति की ज्वाला को बुझाने के लिए दौड़े, परन्तु वह अग्नि शान्त न होकर दिन-रात बढ़ती ही गई।

स्वामीजी के निर्वाण के पश्चात् उनके अनुयायी और अधिक उत्साह से पाखण्ड एवं अन्य मतावलम्बी-दुर्गों को ध्वस्त करने में लग गये। उनके तर्क के तीरों के सम्मुख विपक्षियों को मैदान छोड़ना पड़ा। 'मरता क्या न करता' की उक्ति के अनुसार उन्होंने इन महापुरुषों के प्राण लेने का षड्यन्त्र रचा। अमर शहीद वीर लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल इसी कुचक्र के शिकार हुए।

अति संघर्ष करे जो कोई। प्रगट अनल चन्दन से होई।।

धर्मान्ध लोगों द्वारा अपने नेताओं के बलिदान किये जाने पर उसका प्रतिकार करने के लिए सन् १९२७ ई० में महात्मा हंसराज की अध्यक्षता में दिल्ली में एक विराट् महासम्मेलन हुआ। जिसके परिणामस्वरूप २६ जनवरी, सन् १९२९ ई० को आर्य-रक्षा-समिति के सुदृढ़ अंग के रूप में आर्यवीर-दल की स्थापना की गई। उस समिति के अध्यक्ष महात्मा नारायण स्वामी ने दस हज़ार आर्यवीर और दस सहस्त्र रुपये एक वर्ष में एकत्रित करने की प्रतिज्ञा की। आर्यों में इतना उत्साह था कि कुछ ही मासों में ये दोनों प्रतिज्ञाएँ पूरी हो गई।

इसी मध्य महाशय राजपाल का लाहौर में धर्मान्ध लोगों द्वारा वध कर दिया गया। इन्हीं परिस्थितियों में महात्मा नारायण स्वामी की अध्यक्षता में सन् १९३१ ई० में दूसरे आर्य-महासम्मेलन का आयोजन किया गया जिसमें आर्यवीर-दल की शाखा प्रत्येक प्रान्त, नगर और आर्यसमाज में स्थापित करने का आदेश किया गया जिसमें आर्यवीर-दल के नियमित सञ्चालन के लिए बलिष्ठ आर्यवीरों को अन्य स्थानों पर प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। सर्वत्र क्षात्रधर्म का प्रचार-प्रसार होने से आर्यनेताओं पर होनेवाले आक्रमण रुक गये। सिंहों की दहाड़ सुनकर गीदड़ माँदों में जा छिपे। हिन्दू एवम् आर्यजनों के उत्सव, मेले, शोभायात्रा निर्विघ्न सम्पन्न होने लगे।

कालान्तर में हिन्दुओं के अन्य सामाजिक संगठनों की कुदृष्टि इसपर पड़ने लगी। उसकी विचारधारा में शिक्षित शिक्षकों ने भी उसमें सहयोग दिया। अनेक

बार सामूहिक उत्सवों में इन संगठनों के कार्यकर्त्ताओं ने असहयोग किया। यह सब देखकर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्यवीर दल का समस्त उत्तरदायित्व उत्साही नवयुवक श्री ओमप्रकाश त्यागी को दिया तथा सन् १९३६ ई० में आर्यवीर दल के नियमों को संशोधित करके उन्हें विधिवत् स्वीकृत किया। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग बदलता है। धुन के धनी अदम्य उत्साही, शूरवीर युवक का नेतृत्व पाकर आर्यवीर दल दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करने लगा। सन् १९४२ ई० में ४०० आर्यवीरों का प्रथम शिविर बदरपुर (दिल्ली) में लगा जिसमें सारे देश से चुने हुए आर्यवीरों को एक मास तक सघन प्रशिक्षण दिया गया।

सारे देश में स्वतन्त्रता-संग्राम का बिगुल बजा हुआ था। 'करो या मरो' महात्मा गाँधी के इस उद्देश्य से देश के नवयुवकों का खून खौल उठा। विदेशी वस्त्रों की होली जलाना, रेल की पटरियाँ उखाड़ना, टेलीफोन के खम्बों को उखाड़ना और डाकखाने तथा सरकारी कार्यालयों को अग्नि के अर्पण करना इत्यादि का अभियान सर्वत्र जोर पकड़ गया। ऐसे अवसर पर आर्यवीर कब चुप बैठनेवाले थे। शिविर समाप्त होने पर बहुत-से आर्यवीर इस संग्राम में कूद पड़े। तब से लेकर हैदराबाद रियासत के भारत में विलय होने तक का इतिहास आर्यवीरों के त्याग, बलिदान एवं शौर्य से भरा पड़ा है। धीरे-धीरे पेशावर, बन्नु, कोहाट से कलकत्ता तक आर्यवीर दल का जाल-सा बिछ गया। इसके कार्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है-

१- सुरक्षा :

दिल्ली आर्यवीर दल ने सन् १९२७ ई० या इसके आसपास मुस्लिम गुण्डों से हिन्दुओं की रक्षा, गढ़मुक्तेश्वर तथा यमुना के घाटों पर, मेलों के अवसर पर जनता की सेवा, सहायता और सुरक्षा का प्रशंसनीय कार्य किया जिससे इसकी उपयोगिता सभी को प्रतीत हुई।

सन् १९४६ ई० में पश्चिमी पञ्जाब में हजारा, रावलपिण्डी तथा जेहलम जिलों में, जहाँ पर मुस्लिम संख्या अधिक थी, हिन्दुओं पर भयानक अत्याचार

हुए। सैकड़ों स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए कुओं में छलांग लगाई। सैकड़ों युवक वीरतापूर्वक लड़ते हुए शहीद हुए। उस समय रावलपिण्डी, नौशेरा तथा अन्य स्थानों के आर्य-वीरों ने अपनी जान पर खेलकर हिन्दुओं की रक्षा व सेवा की।

भारत की स्वाधीनता से पूर्व ही सीमाप्रान्त की हिन्दू-जनता को जीवन-मरण के संघर्ष से गुजरना पड़ा। पूर्वी बंगाल के नोआखली जिले में सोहरावर्दी के संकेत से मुस्लिम गुण्डे बंगाल के हिन्दुओं का निर्मम संहार कर रहे थे। सार्वदेशिक सभा द्वारा आदेश मिला कि २०० मौत से खेलनेवाले आर्यवीरों का दल पूर्वी बंगाल भेजा जाए। अलवर के दल को सैनिक भेजने का आदेश हुआ। सभा प्रधान के सामने एक सहस्त्र आर्यवीर खड़े कर दिये गये कि इनमें से किन्हीं २०० का चयन कर लें। प्रत्येक आर्यवीर जाने के लिए आग्रह कर रहा था। श्री ओमप्रकाश जी त्यागी के नेतृत्व में आर्यवीर नोआखली के लिए रवाना हुए। वहाँ जाकर रेलवे स्टेशन से उतरकर प्रभावित क्षेत्र में अपना शिविर लगाने से पूर्व बम विस्फोट किया। गुण्डों को यह समझते देर न लगी कि यह घटना कुछ और संकेत कर रही है। उनकी हिम्मत उधर देखने की भी नहीं हुई।

पास में ही श्रीमती सुचेता कृपलानी के नेतृत्व में काँग्रेस का शिविर लगा हुआ था। इसके कार्यकर्त्ता अहिंसा का मिथ्या राग अलापते और आर्यवीर दल को गालियाँ देते थकते न थे। एक दिन मुस्लिम गुण्डों ने काँग्रेस शिविर पर धावा बोल दिया और सुचेताजी के बालों को पकड़कर घसीटते हुए अपने क्षेत्र की ओर ले-जाने लगे। सूचना पाकर आर्यवीर दल के सेनापति श्री ओमप्रकाशजी सशस्त्र आर्यवीरों के साथ गुण्डों पर टूट पड़े और उनका सारा नशा झाड़ दिया। सुचेताजी खुले बाल, धूललिप्त, भूमि पर पड़ीथीं। श्री ओमप्रकाशजी को सामने देख आँखों में पानी भरकर बोलीं, "भैया! तुम आ गये।" प्रत्युत्तर में इन्होंने कहा कि गुण्डों द्वारा बहिन का अपमान होता देखकर महर्षि दयानन्द के सैनिक कैसे चुप रह सकते हैं? ऐसे ही अनेक अवसरों पर अपनी जान हथेली पर रखकर आर्यवीरों ने न जाने कितनी माताओं-बहिनों की जान बचाई है।

पूर्वी बंगाल से आये हिन्दू-शरणार्थियों का शिविर सीमा के पास लगा हुआ

था। पाकिस्तानी सीमा केवल १०० मीटर दूर थी। यहाँ पाकिस्तानी अंसार गुण्डों से अनेक वार आर्यवीरों की झड़पें हुईं और उन्हें पीछे धकेल दिया गया। ऐसी ही घटना जयनगर के समीप हुई। पाकिस्तान सीमा को पार करके अंसार गुण्डों ने भारतीय चौकी पर आक्रमण करके अपना झण्डा गाड़ने का प्रयास किया। इस समय शिविर में भारतीय पुलिस के केवल चार सिपाही थे जिनमें से एक रोगी था। श्री ओमप्रकाशजी सेनापति आर्यवीर दल उस शिविर को सँभाल रहे थे। दोनों ओर से कुछघण्टे तक गोलियाँ चलीं। अपनी दाल गलती न देख अंसार गुण्डे मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। उनसे छीना पाकिस्तानी झण्डा अव भी आर्यवीर दल के शौर्य की याद दिला रहा है।

हैदराबाद के मुक्ति-संग्राम का प्रारम्भ तो आर्यवीरों ने ही किया था। तीन आर्यवीरों ने निजाम की कार पर बम फेंकने की योजना वनाई। योजनानुसार बम फेंका गया, परन्तु वह फटा नहीं। इससे पहले कि दूसरी कार्यवाही की जाए निजाम के अंगरक्षकों ने नारायणराव को दबोच लिया। उसे भयंकर यातनाएँ दी गईं, परन्तु उसने अपने साथियों के नाम नहीं बतलाए।

उमरी कस्बे में हैदराबाद के निजाम का बैंक था। आर्यवीरों ने योजनावद्ध विधि से उसमें से ३० लाख रुपया लूटकर सरदार पटेल के सुपुर्द कर दिया। इसी भाँति उद्गीर के भाई श्यामलाल धारुर, जिला बीड़ के नवयुवक काशीराम, हुमनावाद के शहीद वेदप्रकाश, श्री कृष्णरावजी ईंटेकर और अन्य वहुत-से आर्यवीरों ने स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए अपने जीवन की आहुतियाँ देकर हैदराबाद को मुक्त कराने का श्रेय प्राप्त किया। हैदराबाद में पुलिस एक्शन के समय सारा कार्यभार आर्यवीरों पर ही था। इसलिए सरदार पटेल को कहना पड़ा कि यदि आर्यसमाज का सहयोग न होता तो सरकार को हैदराबाद को विजय करना कठिनतम होता। वस्तुतः इस रियासत की विजय का सम्पूर्ण श्रेय आर्यवीरों को ही जाता है।

सेवाकार्य :

सेवाकार्य वही कर सकता है जो शरीर से वलिष्ठ तथा अहंकार से शून्य और मानवीय गुणों से युक्त हो। आर्यवीर इस कार्य में पीछे नहीं रहे हैं। कुछ

प्रसंग इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सन् १९३६ ई० में मध्य भारत में दुर्भिक्ष पड़ा। सार्वदेशिक सभा ने आर्यवीरों के निरीक्षण में रतलाम, उज्जैन, झाबुआ, दोहद व मेघनगर में सहायता केन्द्र खोले। यह कार्य डेढ़ मास तक चला। सन् १९४२-४३ ई० में बंगाल में भयंकर अकाल पड़ा, जिसमें ४५ लाख लोग मौत के मुख में चले गये। आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब एवं सार्वदेशिक सभा के तत्वावधान में श्री खुशहालचन्द (आनन्द स्वामी) की अध्यक्षता में आर्यवीरों को सहायतार्थ भेजा गया। आर्यवीरों ने लाखों लोगों में भोजन, वस्त्र और औषधि वितरण का कार्य किया। इसी भाँति देश-विभाजन के समय अनेक सहायता शिविरों का सञ्चालन किया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् १९५० ई० में असम की बाढ़, केकड़ी (राजस्थान) और मोरवी (गुजरात) के जल-प्लावन में भी आर्य-वीरों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी भाँति उत्तरकाशी एवं गुजरात के भूकम्प और उड़ीसा के तूफान में भी आर्यवीरों ने प्रशंसनीय कार्य किया है।

प्रबन्ध व्यवस्था :

जहाँ विधर्मी, आततायी एवं असामाजिक तत्वों से आर्यजाति की सुरक्षा और सेवाकार्य में आर्यवीर दल का प्रशंसनीय योगदान रहा है, वहीं आर्यसमाज के वड़े-वड़े सम्मेलनों में सुरक्षा, चिकित्सा, सेवा, भोजन तथा अन्य अनेक कार्य आर्यवीरों ने सहर्ष किये हैं। सन् १९५२ में नेपाल देश के महाराजा श्री त्रिभुवन वीर विक्रमशाह देव को सेमरा वायु स्थल पर गॉर्ड ऑफ ऑनर तथा अन्य सुरक्षा का दायित्व दल के सेनापति श्री रामाज्ञा वैरागी ने सँभाला।

मथुरा जन्मशताब्दी की प्रवन्ध व्यवस्था के सम्पूर्ण उत्तरदायित्व को आर्यवीरों ने ही वहन किया। उस व्यवस्था को वयोवृद्ध आर्यजन अव भी भूले नहीं हैं। जवकि विना सरकार की सहायता के लाखों लोगों के सम्मेलन में एक भी दुर्घटना नहीं हुई। इसी भाँति सन् १९७५ में दिल्ली में आर्यसमाज स्थापना शताब्दी तथा सन् १९८३ में अजमेर ऋषि निर्वाणोत्सव में सहस्त्रों आर्यवीरों ने प्रवन्ध में सहयोग दिया। अन्य प्रान्तीय सम्मेलनों में भी आर्यवीर सहयोग करते रहे हैं। १९९१ में उत्तरकाशी क्षेत्र में आये भयंकर भूकम्प से पीड़ित लोगों में तीन मास तक राहत सामग्री एवं भवन-निर्माण का प्रशंसनीय कार्य आर्यवीर दल ने किया

है। सन् २००६ में दिल्ली में सार्वदेशिक सभा द्वारा आयोजित आर्य महासम्मेलन में आर्य वीरों की प्रवन्ध व्यवस्था को आर्य जनता कभी भुला न सकेगी।

उपसंहार

आर्यवीर दल का इतिहास, त्याग, वलिदान, देशभक्ति, सेवा और शौर्यगाथा से परिपूर्ण है। जिन्होंने धर्म एवं राष्ट्ररक्षा के लिए अपना सर्वस्व अर्पण किया। उन परिचित एवं अनाम शहीदों को हमारा शत-शत प्रणाम।

तुमने दिया देश को जीवन, देश तुम्हें क्या देगा?
अपना खून गर्म करने को नाम तुम्हारा लेगा।

१०- आर्य-संस्कृति

संस्कृति जागरूकता की वह सम्पत्ति है, वोध और चेतना का वह प्रकार है, जो मनुष्य की आत्मा में विना किसी वाह्य-सम्पत्ति को प्रभावित किये शोभा, शिष्टता और शक्ति के विकास में सहायक होती है। परम्परागत अनुस्यूत (जुड़े हुए) संस्कार ही संस्कृति कहे जाते हैं। पहले से वर्तमान दुर्गुणों को हटाकर उनके स्थान पर सद्गुणों का आधान कर देने का नाम संस्कार है।[1] संस्कारी व्यक्ति को ही संस्कृत कहा जाता है। जिन गुणों से उसे संस्कृत किया जाता है उसे संस्कृति कहते हैं। महर्षि दयानन्दजी ने यजुर्वेद (७।१४) में विद्या, सुशिक्षाजनित नीति (आचरण) को संस्कृति कहा है। विद्या और सुशिक्षा द्वारा उत्तम कृति अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, वुद्धि आदि की उत्तम चेष्टाएँ या क्रियाएँ संस्कृति कही जा सकती हैं। अंग्रेजी भाषा में इसका पर्यायवाची शब्द Culture है जोकि (Culture) लेटिन धातु से वना है। इसके अर्थ बोना, खेती करना, उत्पन्न करना इत्यादि है। जैसे किसान भूमि को जोतकर उसमें अभीष्ट फसल का उत्पादन करता है, वैसे ही मानव के मन, वुद्धि और आत्मा में सुसंस्कारों का समावेश करना संस्कृति कहा जा सकता है।

१- संस्कारो हि गुणान्तराधानमुच्यते। - चरक

संस्कृति एवं सभ्यता में अन्तर

संस्कृति का सम्बन्ध व्यक्ति के आन्तरिक जगत् (मन, बुद्धि, आत्मा) से है जबकि सभ्यताउसके बाह्य जीवन से सम्बन्धित है। बाह्य शिष्टाचार, सफाई रखना, बातचीत का ढंग, परस्पर व्यवहार, सभा एवं समाज में किस प्रकार रहें इत्यादि बातें सभ्यता के अन्तर्गत आती हैं। सभ्यता एवं संस्कृति का क्षेत्र भिन्न होते हुए भी इनका परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि इन दोनों का सम्बन्ध एक ही मानव-जाति से है। ये दोनों एक-दूसरी को प्रभावित करती हैं। सभ्यता शरीर है तो संस्कृति आत्मा।

धर्म एवं संस्कृति का सम्बन्ध

संस्कृति मानव को पूर्ण मानव बनाती है और धर्म इसमें सहायता करता है।[1] धर्म संस्कृति का एक आवश्यक अंग है। किसी भी राष्ट्र या जाति की संस्कृति में धर्म, दर्शन, इतिहास एवं रीति-रिवाज आदि परम्पराओं का होना आवश्यक है। ये परम्पराएँ ही धीरे-धीरे विकसित और दृढ़मूल होकर संस्कृति के रूप में परिणत हो जाती हैं। संस्कृति के विकास में भौगोलिक परिस्थिति, जलवायु, लोगों की आजीविका इत्यादि का बहुत प्रभाव पड़ता है।

आर्यसंस्कृति

आर्यसंस्कृति का मूलाधार वेद है, इसलिए इसे वैदिक संस्कृति भी कह सकते हैं। वेद परमात्मा की वाणी है जोकि सृष्टि के आदि में चार ऋषियों के हृदयों में प्रकट हुई। इसलिए वैदिक संस्कृति सबसे प्रथम (प्राचीन) और सबके लिए वरणीय है।[2]

इस संस्कृति के अनुसार पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की प्राप्ति ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है। आयु को १०० वर्ष मानकर इसे चार

---

1. The aim of the culture is perfection and religion helps to attain that perfection. *(Arnold)*

२- सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा (यजु॰ ७।१४)

आश्रमों में विभक्त किया गया है। प्रारम्भ के २५ वर्षों में ब्रह्मचर्य आश्रम, २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थ-आश्रम, ५० से ७५ वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ-आश्रम और ७५ वर्ष से आगे संन्यास-आश्रम का विधान प्रत्येक द्विज के लिए किया गया है। संक्षेप में निम्न सूत्र से इसका रहस्य समझा जा सकता है।

धर्म (अर्थ + काम) = मोक्ष

अर्थात् ब्रह्मचर्य-आश्रम मेंधर्म, कर्त्तव्यपालन, यम-नियमों का अभ्यास एवं विद्याध्ययन करके गृहस्थ आश्रम में जाने की अनुमति दी जाती थी। वहाँ धर्म के अनुसार अर्थ (धन) का उपार्जन, और मर्यादा में रहकर उसका उपभोग, सांसारिक व्यवहार और राष्ट्र के लिए उत्तम सन्तान का निर्माण करने का विधान किया है। जब ५०-५५ वर्ष की आयु और लड़के के भी लड़का उत्पन्न हो जाए तब गृहस्थ का भार पुत्र को सौंपकर वानप्रस्थ-आश्रम में प्रवेश करे। गृहस्थ में आई न्यूनता की तप, संयम, सत्संग-स्वाध्याय द्वारा पूर्ति करे। विद्यालयों में केवल आवश्यकतानुसार रोटी, कपड़ा लेकर निःशुल्क विद्या पढ़ायें या अन्य सामाजिक कार्यों को अवैतनिक करे। साथ ही योगाभ्यास भी करता रहे। पितृऋण, देवऋण, ऋषिऋण- इन तीनों ऋणों से मुक्त होकर सभी कर्तव्य-कर्मों से मुक्त होकर चतुर्थ आश्रम संन्यास को ग्रहण कर ईश्वर की भक्ति, योगाभ्यास में तल्लीन रहे और जगत् के उपकारार्थ सर्वत्र भ्रमण, उपदेश करता रहे तथा अन्तिम लक्ष्य मुक्ति की प्राप्ति करके जन्म-मरण के चक्र से मुक्त होने का प्रयत्न करे। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यसंस्कृति में इस लोक और परलोक दोनों की सिद्धि के लिए विधान किया गया है।

वैदिक संस्कृति यज्ञप्रधान है। यज्ञ शब्द संस्कृत की 'यज' धातु से वना है, जिसका अर्थ देवपूजा, संगतिकरण और दान है। प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म को यज्ञ कहा जा सकता है। अपने स्वार्थ का परित्याग करके परोपकारार्थ अपनी प्रिय वस्तु का समर्पण करना यज्ञ है। यज्ञ से व्यक्ति में दिव्य गुणों की वृद्धि होकर स्वर्ग ;सुख विशेष की प्राप्ति होती है। मनु महाराज ने इसीलिए प्रत्येक गृहस्थी के लिए ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ और बलिवैश्वदेवयज्ञ का विधान किया है। जब तक आर्यावर्त में यज्ञ होते रहे तब तक समय-समय पर वृष्टि, जलवायु की शुद्धि, पर्यावरण की शुद्धता, ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि और रोगों से मुक्ति हो

सर्वांगीण उन्नति होती रही।

इस संस्कृति में समस्त धन को परमेश्वर का मानकर ही उपभोग करने का उपदेश दिया है-

ईशा वास्यमिदँ सर्वं यत् किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।।

- यजुः० ४०।१

हे मनुष्य! इस चराचर जगत् में जो कुछ भी है उसमें सर्वत्र परमेश्वर विद्यमान है। इसलिए उस परमेश्वर के दिये हुए पदार्थों का त्यागपूर्वक भोग कर। किसी के पराये धन की कामना मत कर। **'कस्य स्विद् धनम्'** का अभिप्राय है कि यह धन कस्य (प्रजापति) का है। अथवा यह धन किसका है? किसी का भी नहीं। केवल परमेश्वर प्रदत्त है। परमेश्वर का होने से उसे त्यागपूर्वक भोगना और दूसरे के धन का लालच न करना ही अभिप्रेत है। इस मन्त्र में दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कही गई है कि जब सब धन परमेश्वर का है तो उसे धरोहर समझकर परमेश्वर की प्रजाहेतु अच्छे कार्यों में दान करना चाहिए। ऋग्वेद में दान की प्रशंसा की गई है। उदाहरण के लिए एक मन्त्र यहाँ उद्धृत किया जाता है-

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाधो भवति केवलादी।। - ऋग्वेद

इसका तात्पर्य यह है कि जो अपने ही स्वार्थ या उदरपूर्ति में लगा रहता है, अच्छे कार्यों में दान नहीं देता वह केवल पाप का ही भोजन करता है, अर्थात् पापी है।

यह संस्कृति इतनी उदात्त है कि इसे स्वीकार करने में किसी भी धर्म, सम्प्रदाय के अनुयायी को किसी प्रकार का प्रतिवन्ध नहीं है। **'मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे'** मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ। यह आदर्श किसे अच्छा नहीं लगेगा? 'मनुर्भव' मनुष्य वन। इस बात से कौन इन्कार करेगा? इस संस्कृति में जाति, धर्म, सम्प्रदाय और देशविशेष की बात न कहकर समस्त संसार के मनुष्यों को एक इकाई मानकर रहने का मार्ग प्रदर्शित किया है। ऋग्वेद का अन्तिम सूक्त, जिसे संगठनसूक्त भी कहते हैं, इसका विशद विवेचन करता है। यथा-"हे मनुष्यो! तुम सब मिलकर चलो, मिलकर बोलो, तुम्हारा चिन्तन

एक हो।''

तुम्हारे खान-पानादि के स्थान एक हों, जैसे नाभि में अरे लगे रहते हैं, जैसे ऋत्विज् और यजमान सब मिलकर यज्ञादि का अनुष्ठान करते हैं वैसे ही तुम सब धर्मयुक्त कर्मों को तथा एक-दूसरे का हित साधन मिलकर किया करो (अथर्व० ३।३०।६)।

मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा को संस्कृत करने के लिए वैदिक संस्कृति में सोलह संस्कारों का प्रावधान किया है। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, गुणों की अभिवृद्धि करना संस्कार कहलाता है। जब बालक गर्भ में आता है उस समय से जन्म लेने तक चार संस्कारों द्वारा भावी शिशु को स्वस्थ, सुरूप एवं बुद्धिमान् बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इसी भाँति आगे के संस्कार भी उसे प्रगति की ओर अग्रसर करने के लिए किये जाते हैं। संस्कारों द्वारा संस्कृत होकर ही मानव शूद्रभाव से पृथक् होकर द्विज बनता है। स्वाध्याय, ज़प, हवन, ज्ञान, कर्म, उपासना, योग्य सन्तान उत्पन्न करने, पञ्च महायज्ञ और यज्ञों के द्वारा ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म परमेश्वर को जानने योग्य शरीर का निर्माण किया जाता है।

अन्य संस्कृतियों से तुलना

इतिहास इस बात का साक्षी है कि किसी समय यूनान, रोम, मिश्रादि सभ्यता एवं संस्कृति के केन्द्र थे, किन्तु इस्लाम की प्रचण्ड आँधी ने उन्हें धराशायी कर दिया। यह आँधी अरब देश से उठकर मार्ग में आनेवाले अनेक राष्ट्र एवं संस्कृतियों को पददलित करती हुई भारत में भी आई, परन्तु इस देश की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि इतनी सुदृढ़ तथा सुसंगठित थी कि धार्मिक उन्माद एवं उत्पीड़न की आँधी कुछ भी नहीं बिगाड़ सकी। उर्दू के एक कवि हाली को लिखना पड़ा-

वो दीने हिजाजी का बेबाक बेड़ा,
निशाँ जिसका अकसाये आलम में पहुँचा।
मुज़ाहिम हुआ कोई खतरा न जिसका,
न उम्माँ में ठठका न कुल्जम में झझका।।
किये पैसिपुर जिसने सातों समुन्दर,
वो डूबा दहाने में गंगा के आकर।।

अर्थात् जिस इस्लाम ने तलवार के बल पर अनेक देश-देशान्तरों को रौंदते हुए वहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति का नामोनिशाँ मिटा दिया, वह गंगा के दहाने में आकर डूब गया। सात-सौ वर्ष तक हमपर अत्याचार होते रहे। हमारे पूर्वजों ने अपनी गर्दनें कटवाना स्वीकार किया, शत्रु से लोहा लेते हुए शहीद हो गये, परन्तु उनकी संस्कृति को स्वीकार नहीं किया। इसके पीछे हमारी संस्कृति का सुदृढ़ आधार ही कारण है। जहाँ अन्य संस्कृतियों के अनुयायी सत्ता-प्राप्ति के लिए पुत्र, भाई एवं पिता को भी जेल में डाल या उनका वध करते रहे, वहाँ आर्य-संस्कृति के उन्नायक श्रीराम और भरत राजसिंहासन को गेंद के समान 'मुझे यह गद्दी नहीं चाहिए' यह कहकर ठुकराते रहे। पर-स्त्री को माता के समान समझनेवाले वीर लक्ष्मण, अर्जुन, शिवाजी और दुर्गादास वे नर-रत्न हैं जिनकी दीप्ति कभी भी मन्द नहीं होगी। सीता, सावित्री, दमयन्ती जैसी साध्वी, महारानी दुर्गा और लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगनाएँ अन्यत्र दुर्लभ हैं। ब्रह्मचर्य के धनी हनुमान, भीष्म पितामह, शंकराचार्य और महर्षि दयानन्द जी अपनी यशःकीर्ति से आज भी देदीप्यमान हो रहे हैं। ये महामानव आर्यसंस्कृति की छत्रछाया में फूले-फले हैं।

आज की पाश्चात्य संस्कृति में धर्म और मोक्ष का परित्याग करके केवल अर्थ और काम ही रह गये हैं। यह आसुरी संस्कृति कही जा सकती है। रावण ने सीता को प्रलोभन देते हुए यही तो कहा था-

यथाकामं भुंक्ष्व भोगान् पिब भीरु रमस्व च।

हे सीते! मेरी पटरानी बनकर इस सोने की लंका में अपनी रुचि के अनुसार भोगों को भोगो, हृदय को आह्लादित करनेवाले पेय (मद्यादि) का पान करो और हाथी, घोड़े, पुष्पक यानादि में बैठकर जहाँ इच्छा हो भ्रमण करो।

(Eat, drink and be merry) अर्थात् खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ यही सब कुछ तो रावण ने सीता को कहा था। कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली। कहाँ कर्त्तव्यपालन, संयम, सदाचार, 'मातृवत्परदारेषु' का भाव और कहाँ मर्यादाओं का अतिक्रमण करके केवल भोग भोगने के विधि साधनों का संग्रह करने वाली पश्चिम की अपसंस्कृति /सभ्यता दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है।

११- आर्यजाति, उत्थान एवं पतन

मूलरूप में आर्यशव्द जातिवाचक न होकर गुणवाचक है। श्रेष्ठ, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानी, पुरुषार्थी व्यक्ति का नाम आर्य और इतर का नाम अनार्य या दस्यु वेद में कहा गया है। जिनके जीवन में व्रत, सत्यभाषणादि हों उन्हें ही आर्य कहते हैं। संसार में भले और वुरे दो ही प्रकार के मनुष्य होते हैं।

पाश्चात्य विद्वानों ने आर्यजाति के लक्षण-रंग गोरा, कद लम्वा, नाक लम्वी इत्यादि दिये हैं तथा ये लोग मध्य एशिया ये आये ऐसा उल्लेख किया है। उनका यह कथन प्रमाणों के अभाव में सर्वथा विपरीत है। सृष्टि की उत्पत्ति सवसे पहले त्रिविष्टप (तिव्वत) में हुई, क्योंकि इस समय यही स्थान सृष्टि की उत्पत्ति के लिए सवसे अनुकूल था। वहाँ स्थानाभाव होने के कारण कालान्तर में आर्यलोग हिमालय से नीचे उतरे और गंगा, यमुना, सिन्धु आदि नदियों से सिञ्चित समतल भूमि में वसते हुए धीरे-धीरे सारे आर्यावर्त्त देश में फैल गये। इनके आने से पहले इस देश में कोई अन्य जाति नहीं वसती थी। आर्यों द्वारा इसे वसाये जाने के कारण ही इस देश को आर्यावर्त्त कहते हैं। इन्हीं की दूसरी शाखा यूरोप के देशों की ओर गई।

इसकी उन्नति के निम्नलिखित कारण थे -

१- वर्ण-व्यवस्था

पहले ब्रह्म (परमेश्वर) से उत्पन्न अमैथुनी सृष्टि का नाम 'ब्राह्मी सृष्टि' था। उस समय केवल एक ही वर्ण 'ब्राह्मण वर्ण' का अस्तित्व था। जव समाज का कार्य नहीं चला तो ब्राह्मण वर्ण ने अपने में से क्षात्र वर्ण को पृथक् किया जिसका कार्य अन्याय का निवारण और राजकार्य को सँभालना निश्चित किया। इतने में भी जव समाज का कार्य भली-भाँति नहीं चला तव ब्राह्मण वर्ण में से तीसरे वर्ण 'वैश्य वर्ण' की स्थापना की गई, जिन्हें कृषि, गोपालन और उद्योग व व्यापार का कार्य सौंपा गया। इतने से भी जव समाज का कार्य नहीं चला तव ब्राह्मण वर्ण से ही चतुर्थ 'शूद्र वर्ण' का निर्माण किया गया, इसका कार्य परिश्रम के कार्य करना,

तीनों वर्णों का सहयोग एवं समाजसेवा निश्चित किया गया। जैसे पृथिवी सब प्राणियों का पोषण करने से 'पूषा' कहलाती है, वैसे ही सब प्राणियों की सेवा, सहयोगादि द्वारा पोषण करने से चौथे वर्ण का नाम 'पूषा' प्रसिद्ध हुआ। ये चारों वर्ण ब्राह्मण वर्ण से ही उत्पन्न होने के कारण इनमें परस्पर कोई ऊँच-नीच का भाव नहीं था।[1] इनका विभाग केवल समाज के विभिन्न कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार किया गया था, जिसमें जन्म का कोई महत्व नहीं था।

समाज के कार्यों का पृथक्-पृथक् निर्धारण करने से सर्वत्र सुखैश्वर्य की वृद्धि हुई। महाभारत के काल तक आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य रहा। मैत्र्युपनिषद् में सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्र्यश्व, अश्वपति, शशबिन्दु, हरिशचन्द्र, अम्बरीश, ननत्तु, सर्याति, ययाति, इन्द्रद्युम्न, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत् और भरत इत्यादि चक्रवर्ती सम्राटों के नाम आये हैं।

२- सुदृढ़ संस्कृति

किसी भी जाति को प्रेरणा उसकी संस्कृति से ही मिलती है। आर्यों की संस्कृति वेद पर आधारित संस्कृति है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र एवं योगेश्वर श्रीकृष्णजी इस संस्कृति के आकाश में सूर्य और चन्द्रमा के समान देदीप्यमान रत्न हैं। जिनके जीवन से आर्यजाति आज भी अनुप्राणित हो रही है।

३- वैदिक धर्म

धर्म व्यक्ति की अन्तरात्मा को कर्तव्य पथ पर चलने के लिए निरन्तर अनुप्राणित करता रहता है। आर्यों का धर्म वैदिक धर्म है। **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'**

१- (क) वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्। -ऋ १।५१।८

(ख) ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं सन्नव्यभ्वत्।
तच्छ्रेयोरूपमसृजत् क्षत्रम्।। -बृहदारण्यकोपनिषद् १।४।११

(ग) न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्व सृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम्।।

-महा॰ शान्तिपर्व ११८।१०

(मनु)। धर्म का ज्ञान वेदों द्वारा ही किया जा सकता है। जव तक वेद का पठन-पाठन, उपदेशादि आर्यावर्त देश में रहा तव तक आर्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित, कर्त्तव्याकर्त्तव्य को जानकर सुख-शान्ति और समृद्धि से युक्त रहते रहे।

४- एक ईश्वर

ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और जीवों को पुण्य-पापरूप कर्मों के अनुसार शुभाशुभ फलों को देनेवाला है। वह सर्वशक्तिमान, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, नित्य और निराकार है।[१] उसकी कोई मूर्ति नहीं वन सकती।[२] उसका मुख्य नाम ओ३म् है।[३] गुण-कर्मों के अनुसार उसे वहुत नामों से पुकारा जाता है।[४] उसके समान अन्य कोई नहीं हो सकता। किये हुए कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है।[५] कर्मफल को अन्यथा करना ईश्वर के भी वश में नहीं है। वेद उसकी वाणी है जो चार ऋषियों के हृदय में प्रकट हुई। एक धर्म तथा एक ईश्वर को मानने से परस्पर मतभेद न होकर समान उद्देश्य के लिए पुरुषार्थ करने की प्रवृत्ति बनी रही।

५- पुरुषार्थ

वेदों में सौ वर्ष तक कर्म करते हुए जीने का उपदेश दिया है।[६] पुरुषार्थ से धन-प्राप्ति के अनेक मन्त्र हैं जिनमें से कुछ का भावार्थ यहाँ उद्धृत किया जाता है। हे मनुष्यो! तुम दुग्धादि रसों का पान करके तृप्त हा जाओ, आगे बढ़ो और धनों को धारण करो।[७] 'बिना पुरुषार्थ किये देवता मित्र नहीं बनते'।[८] 'श्रम के बिना श्री की प्राप्ति नहीं हो सकती।' 'आलसी मनुष्य पापी होता है।' देवता यज्ञ

१- अधिक ज्ञानार्थ देखिए आर्यसमाज का दूसरा नियम।

२- न तस्य प्रतिमा अस्ति। -यजुः०

३- ओ३म् क्रतो स्मर, ओ३म् खम् ब्रह्म, ओ३म् प्रतिष्ठ।। - यजुः०

४- एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

५- अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

६- कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः। -यजुः० ४०।२

७- पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्। -ऋ० ८।३५।१०

८- (क) न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः। -ऋ० ४।)।११

(ख) नानाश्रान्ताय श्रीरस्ति। पापो नृषद्वरो जनः। -एतरेय ब्रा०)।३

करनेवालों की इच्छा करते हैं, आलसी मनुष्य को वे नहीं चाहते।[1] पुरुषार्थ न करनेवाला दस्यु (डाकू) है।[2]

जब तक पुरुषार्थ करके धनैश्वर्य एवं अन्य सुखोपभोग के साधन प्राप्त करने की प्रवृत्ति बनी रही तब तक आर्यावर्त्त देश धन-सम्पत्ति से सदा समृद्ध रहा। स्त्री-पुरुष सभी स्वर्ण के आभूषण पहनते थे। पशुधन के अधिक होने से घी-दूध की नदियाँ बहती थीं। यह देश सोने की चिड़िया कहलाता था।

६- राज्य वृद्धि

वर्तमान समय में आर्यजाति के अबोध बालकों को यह भ्रमित इतिहास पढ़ाया जाता है कि हमने किसी पड़ोसी देश पर आधिपत्य किया ही नहीं, यहाँ कभी एक व्यक्ति का समस्त देश पर राज्य रहा ही नहीं और इस देश के लोगों ने मिलकर रहना सीखा ही नहीं इत्यादि। परन्तु ये सारी कपोलकल्पनाएँ हैं। जैसाकि पूर्व में कहा जा चुका है कि सृष्टि के आदि से महाभारत के युद्ध तक आर्यों का सारे भू-मण्डल पर चक्रवर्ती साम्राज्य रहा है।

यहाँ के राजा, महाराजा राज्य की वृद्धि के लिए राजसूय और अश्वमेधयज्ञ किया करते थे। महाभारत के युद्ध में समस्त भूमण्डल के राजाओं ने भाग लिया था। यदि वहाँ आर्यों का राज्य नहीं था तो वे राजा लोग युद्ध में भाग लेने क्यों आते? इसी भाँति युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ करने पर देश-विदेश के राजा भेंट लेकर उपस्थित हुए थे।

७- राष्ट्र प्रेम

मातृभूमि एवं राष्ट्रियता शब्द आर्यों के लिए नये नहीं हैं। अथर्ववेद का पृथिवीसूक्त सुप्रसिद्ध है, जिसमें भूमि को माता कहकर सम्बोधित किया गया है।[3] राष्ट्ररक्षा के उपायों का चिन्तन समाज का बुद्धिजीवी वर्ग करता रहता था।

१- इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्। -ऋ० १०।१५५।३

२- अकर्मा दस्युः। - ऋग्वेद

३- माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

८- स्त्री-शिक्षा

वेदकालीन समाज में स्त्रियों का महत्वपूर्ण स्थान था। उन्हें अर्धांगिनी कहा गया है। तैत्तिरीय संहिता के अनुसार पत्नी, पुरुष का आधा शरीर होती है।[१] पुरुषों के समान स्त्रियाँ भी विद्या, यज्ञकर्म, शिल्पकला, गणित, आयुर्वेद तथा अन्य ज्ञान-विज्ञान का शिक्षण प्राप्त करती थीं। विद्या समाप्त करके युवावस्था में स्वयंवर विधि से विवाह करके गृहस्थ आश्रम में उत्तम सन्तानों का निर्माण मातृशक्ति द्वारा किया जाता था। गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, महारानी मदालसा जैसी देवियाँ स्त्रियों में भूषणरूप हैं। सीता, सावित्री का पतिव्रत धर्म, कैकेयी का युद्धभूमि में महाराजा दशरथ की सहायता करना, रानी झाँसी, रानी दुर्गावती का शत्रुसैन्य पर टूट पड़ना, स्त्री-शिक्षा के महत्व को प्रकट करता है। मनु महाराज कहते हैं "जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं।"[२]

९- अस्त्र-शस्त्र का ज्ञान

'शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे शास्त्रचर्चा प्रवर्तते' इस श्रुति के अनुसार आर्यजाति में शस्त्रास्त्र सम्बन्धी विज्ञान चरमसीमा तक पहुँच गया था। आजकल के अणु-आयुधों जैसे अस्त्रों का वर्णन वेद, रामायण एवं महाभारत में मिलता है। जब तक इनका वर्चस्व रहा आर्यों का चक्रवर्ती साम्राज्य समस्त पृथिवी पर बना रहा।

१०- यज्ञ

आर्यसंस्कृति का मूलस्तम्भ यज्ञ ही है। सभी गृहस्थ आश्रमी एवं राजा लोग बड़े-बड़े यज्ञ करते थे, जिनसे गायनविद्या, शिल्पविद्या, व्यावहारिक धर्म, व्यापार इत्यादि की अभिवृद्धि हुई। धीरे-धीरे इसने उत्सवों का रूप ले लिया, जिनमें दूर-दूर से लोग सम्मिलित होने लगे। परस्पर विचार-विमर्श होने से ज्ञान-विज्ञान और एकता के भाव जाग्रत् हुए। यहाँ यह पौराणिक कथा उपयुक्त जान पड़ती है

१- अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी। - तै० सं० ६।१।८

२- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। - मनुस्मृति

कि असुरों से परास्त होकर देवों ने उनसे केवल यज्ञ करने के लिए कुछ भूमि माँगी। उनके स्वीकार करने पर देवों ने यज्ञ प्रारम्भ कर दिये। जहाँ-जहाँ यज्ञ होने लगे वहाँ से असुर हटने लगे। इसी भाँति यज्ञ के द्वारा देवों का सारी पृथिवी पर फिर से आधिपत्य हो गया। वस्तुतः यज्ञ संगठन का प्रतीक है, जिसमें सब की उन्नति के उपायों पर विचार किया जाता है। परस्पर प्रेमभाव, वेदचर्चा और मिलकर कार्य करने की प्रवृत्ति का उदय होता है।

अवनति के कारण

१- महाभारत का युद्ध

महाराजा इक्ष्वाकु से लेकर युधिष्ठिर तक आर्यों का समस्त भूमण्डल पर साम्राज्य रहा। महाराज युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में देश-विदेश के अनेक माण्डलिक राजा विविध भेंट लेकर उपस्थित हुए थे, परन्तु महाभारत के युद्ध ने आर्यजाति को अवनति के गर्त में ऐसा धकेला कि अव तक नहीं उभर पायी है। बड़े-बड़े योद्धा, वैज्ञानिक, विद्वान् सभी इस वैराग्नि में स्वाहा हो गये। जव भाई ही भाई के रक्त का प्यासा हो जाए तो इसका लाभ उठाकर तीसरी शक्ति सत्ता सँभाल लेती है। महाभारत युद्ध के पश्चात् आर्यजाति इतनी निष्प्राण हो गई कि वाद में विदेशी आक्रान्ताओं के सामने उसे घुटने टिकाने ही पड़े। जैसे सूर्यास्त हो जाने पर कुछ दिखलाई नहीं देता और जुगनू या दीपक को आश्रय मानकर ही लोग अन्धकार में रास्ता ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं, वैसे ही वेद के ज्ञाता ब्राह्मणों के न रहने से वैदिक धर्म का लोप हुआ और अनेक मिथ्या मत-मतान्तर, अन्धविश्वास तथा अन्य कुरीतियाँ प्रचलित हो गईं जिनमें से कुछ का प्रसंगानुसार वर्णन उचित होगा।

२- जन्म से वर्ण-व्यवस्था

यह पहले ही कहा जा चुका है कि समाज के कार्यों को ठीक प्रकार से चलाने के लिए ब्राह्मण वर्ण से ही अन्य तीन वर्णों का निर्माण गुण, कर्म, स्वभाव के

अनुसार किया गया, परन्तु वाद में इसका स्थान (योग्यता के स्थान पर) जन्म ने ले लिया। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि पहले ब्राह्मणादि का पद विद्या, वेदाभ्यास, विनम्रतादि सद्‌गुणों से प्राप्त होता था वह अनायास ही मिल जाने से विद्यादि में होनेवाला परिश्रम छूट गया और समाज के मूर्धन्य मार्गदर्शक ब्राह्मण-वर्ण का कार्य अपने को उच्च तथा अन्य वर्णों को योग्य होने पर भी नीच बताना ही रह गया। वेदों का पठन-पाठन केवल ब्राह्मणों तक सीमित हो गया। **"स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्"** स्त्री और शूद्र वेद नहीं पढ़ें, ऐसी घोषणा सभी में ब्रह्मभाव माननेवाले स्वामी शंकराचार्य द्वारा की गई। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि वहुसंख्य वर्ग वेदज्ञान से शून्य होकर कर्त्तव्याकर्त्तव्य से विमूढ़ हो गया। ऐसी स्थिति में तथाकथित धर्म के ठेकेदारों की बन आई और उन्होंने स्वार्थसिद्धि के लिए अनेक मिथ्या आडम्बर, मत-मतान्तर वेद के नाम से स्थापित कर दिये।

३- बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव

आर्यजाति के लिए वह दिन सबसे दुर्भाग्यपूर्ण था जव सम्राट् अशोक ने क्षात्रधर्म का परित्याग करके बौद्ध धर्म स्वीकार किया। अपने बाहुवल से उसने पूर्व में बंगाल, दक्षिण में गोदावरी नदी, पश्चिम में सिन्धु और उत्तर में हिमालय तक राज्य का विस्तार किया। उसने अन्तिम आक्रमण कलिंग (उड़ीसा) देश पर किया और लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। इस क्रूरता से उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसने बौद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण कर ली। अहिंसा का बेसुरा राग अलापा जाने लगा। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को देश-विदेश में भिजवाया। 'यथा राजा तथा प्रजा' इस लोकोक्ति के अनुसार प्रजा भी अपने क्षात्रधर्म को त्यागकर बौद्धमत की अनुयायी बनने लगी। क्षत्रिय नवयुवक, क्षात्रधर्म एवं गृहस्थ का उत्तरदायित्व छोड़ मूंड मुंडाकर बौद्धभिक्षु बनने लगे इसके दुष्परिणामस्वरूप अशोक के समय में ही उसका विशाल साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। अशोक के पश्चात् कनिष्क ने बौद्ध मत स्वीकार कर लिया। तब से लेकर अब तक अहिंसा का यह रोग जाति की रगों में इतना गहरा बैठ गया है कि किसी भी उपचार से इसपर नियन्त्रण करना कठिन है।

४- मूर्तिपूजा

जैनमत व बौद्धमत से मूर्तिपूजा का प्रारम्भ हुआ। उनका अनुकरण करके वेदज्ञान से शून्य स्वार्थी, धर्म के ठेकेदार लोगों ने निराकार परमेश्वर के विभिन्न अवतार तथा देवी-देवताओं की मूर्तियाँ मन्दिर बनवाकर स्थापित करवाई। आगे जाकर इन मन्दिर-मठों में इतना धन एकत्र हो गया कि विदेशी आक्रमणकारियों ने इन्हें लूटने के लिए अनेक बार चढ़ाइयाँ कीं। गज़नी देश के लुटेरे आक्रान्ता महमूद ने नगरकोट (कांगड़ा) के मन्दिर को लूटकर अथाह धन-सम्पत्ति प्राप्त की। अनुमानतः ६-७ सौ मन सोना लूटा गया। एक चाँदी का मकान भी मिला। इससे उत्साहित होकर उसने थानेश्वर एवं मथुरा के देवालयों पर आक्रमण किया। इसी प्रकार १६ बार लूटमार की। उसका अन्तिम आक्रमण सोमनाथ (गुजरात) मन्दिर पर हुआ। आक्रमण की सूचना पाकर स्थानीय क्षत्रिय योद्धा एवं राजपूत राजाओं ने मन्दिर की रक्षा करने का प्रस्ताव किया, किन्तु पण्डे-पुजारियों ने कहा कि चिन्ता करने की कोई बात नहीं, सोमनाथ भगवान् स्वयं अपनी रक्षा एवं मलेच्छों का मानमर्दन कर देंगे। महमूद गजनवी गाजर-मूली की भाँति ५० हज़ार लोगों को काटता हुआ असंख्य धनराशि, हीरे-जवाहरात ले गया। सोमनाथ की मूर्ति को तोड़कर उसे गज़नी की मस्जिद की सीढ़ियों पर लगवाया। इसके पश्चात् के आक्रमणकारियों के लिए भी मूर्तिभञ्जन और मन्दिरों में एकत्रित धन-सम्पत्ति लूटना ही मुख्य आकर्षण रहे। मूर्तिपूजा परमात्मा-प्राप्ति की सीढ़ी न होकर वह भयंकर खाई सिद्ध हुई जिससे अब तक हम निकल नहीं पाये हैं।

५- शंकराचार्य का मायावाद

महात्मा बुद्ध के पश्चात् शंकराचार्य ने अथक परिश्रम करके पुनः वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा की, इसमें सन्देह नहीं है, परन्तु बुद्ध के 'सर्व दुःखम्' और शून्यवाद के स्थान पर 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' और प्रत्येक दृश्य वस्तु को माया बतलाकर आर्यजाति को संसार से ही विमुख कर दिया। अब धर्म का सामाजिक स्वरूप न रहकर प्रत्येक को जगन्मिथ्या के ज्वर ने दबा लिया। बौद्धमत के समान शंकराचार्य की भी बहुत प्रतिष्ठा होने से उसके अनुयायी धड़ाधड़ संसार का परित्याग करके संन्यासी बनने लगे जोकि सभी कर्त्तव्य-कर्मों से विमुख होकर देश

पर भार सिद्ध हुए। आज इनकी संख्या ६०-७० लाख वताई जाती है। यदि आज भारत के साधु-संन्यासी मिलकर विद्या, सुशिक्षा, धर्म एवं राष्ट्रियता का कार्य करें तो देश का कायाकल्प होते देर न लगेगी।

६- फलित ज्योतिष

इस मिथ्या अन्धविश्वास ने आर्यजाति की अकथनीय क्षति की है। शत्रु द्वारा आक्रमण करने पर मुहूर्त देखना, सामने विल्ली, कौआ, कुत्ता, गीदड़ आ जाए या वोले तो अपशकुन मानना, देवी-देवताओं की प्रसन्नता या नाराजगी पर विश्वास करना और भविष्यपुराण की वातों को सत्य मानकर कर्त्तव्य-विमुख हो जाना इत्यादि बहुत-से कारण हैं जिनसे ग्रस्त होकर देशवासी पुरुषार्थ को छोड़ भाग्यवादी बन बैठे हैं। इसका एक उदाहरण देना उचित होगा। मुहम्मद-विन कासिम ने सिन्ध के राजा दाहिर पर आक्रमण किया। दाहिर ने शूरवीरता से उसका मुकाबला किया। जब दाहिर की विजय होने वाली थी तभी एक घटना ने पासा पलट दिया। हुआ यह कि मुहम्मद-विन-कासिम को किसी घर के भेदी ने यह वताया कि हिन्दू सैनिकों से पण्डे लोगों ने यह कहा हुआ है कि जव तक इस सामनेवाली मन्दिर की ध्वजा फहरा रही है तव तक देवी तुमपर प्रसन्न रहेगी और तुम्हारी पराजय नहीं हो सकती। इस भेद को जानकर मुहम्मद-विन-कासिम ने मन्दिर को लक्ष्य वना तोप का गोला मारकर पताका को गिरा दिया और हिन्दू सैनिक देवी को अप्रसन्न जानकर जीती हुई बाजी छोड़कर मैदान से भाग निकले। ऐसी अनेक घटनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त भविष्यपुराण में लिखा है कि कलियुग में मलेच्छ लोगों का राज्य होगा। इन सव अन्धविश्वासों में फँसकर पराजय का समय जान वीर क्षत्रिय अपने कर्त्तव्य-कर्म से विमुख हो बैठे। उन्होंने वेद के इस प्रेरक वाक्य **"कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः"** अर्थात् मेरे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ और बायें हाथ में विजय है, को भुला दिया।

७- छुआछूत

जन्म से वर्ण व्यवस्था माननें के कारण समाज के परिश्रमी वर्ग शूद्र को अस्पृश्य माना जाने लगा। स्त्रियों के लिए भी शिक्षा के द्वार बन्द हो गये। एक

जाति की अनेक उपजातियाँ बन गईं, जिनमें से कुछ अपने को उच्च तथा अन्यों को नीच मानती थीं। किसी कवि का यह कथन उनपर पूर्ण चरितार्थ होता है -

ज्यों कदली के पात पात में पात।
ज्यों गप्पी की बात बात में बात।
ज्यों गधे की लात लात में लात।
त्यों हिन्दुओं की जात जात में जात।

कहते हैं कनवाहा के युद्ध में बाबर भयभीत होकर वापस लौटनेवाला ही था कि रात को उसने देखा कि राणा सांगा की सेना में स्थान-स्थान पर चूल्हे जल रहे हैं। यह क्या है? पूछने पर गुप्तचरों ने बतलाया कि हिन्दू लोग दूसरी जाति के लोगों का छुआ हुआ भोजन नहीं ख़ाते। इनकी एकता नारंगी की भाँति है जो बाहर से एक दीखते हुए भी भीतर से विभक्त हैं। इस बात को सुनकर बाबर ने उसी समय आक्रमण करने की आज्ञा दी और विजयश्री का वरण किया।

८- समष्टि-धर्म का अभाव

वैदिक धर्म सामाजिक धर्म है, जिसमें मिलकर चलने, बोलने, विचार करने, खाने-पीने, धन सम्पत्ति का उपभोग करने और राज्य प्राप्त करने के बहुत-से मन्त्र आये हैं, परन्तु महात्मा बुद्ध और शंकराचार्य के दुःख एवं मायावाद ने धर्म को समष्टि से पृथक् कर दिया, परिणामस्वरूप व्यक्ति को अपनी मुक्ति की ही सूझने लगी। लड़ने का कार्य केवल क्षत्रियों का ही रह गया। जबकि शास्त्रों में यह स्पष्ट लिखा है कि राष्ट्र पर विपत्ति आने पर अन्य वर्णों को शस्त्र उठाने चाहिएँ। जनमानस में यह भावना घर कर गई कि **'कोऊ नृप होऊ हमें का हानि'** इसका बहुत दुष्प्रभाव हुआ, क्योंकि जब जनसाधारण में यह भ्रान्ति हो जाए कि 'दिल्ली का राज्य कोई करे हमें तो केवल कर ही देना है' तब विधर्मियों का प्रतिरोध कौन करेगा?

९- शुद्धि का अभाव

जन्म से जाति-पाति और छुआछूत के रोग ने आर्यजाति को इतना जर्जरित कर दिया कि अब तक नहीं सँभल पाई है। इसका लाभ मुसलमानों ने पर्याप्त

उठाया है। उन्होंने भारतवर्ष की क्षत्रिय जातियों को प्रलोभन देकर या वलात् इस्लाम स्वीकार करने को वाध्य किया। कुओं में गोमांस डाल दिया गया। हमारे जो भाई किसी भी कारण से पतित हो गये, उनके लिए पुनः शुद्ध होने का द्वार वन्द हो जाने से वे अपमानित होकर दुगुने धार्मिक उन्माद से हिन्दुओं को मुसलमान वनाने लगे। वंगाल का काला पहाड़ जोकि पहले कालीचन्द्र शर्मा था, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अलाउद्दीन खिलजी के लिए दक्षिण भारत की विंजय करनेवाला मलिक काफूर पहले हिन्दू ही था। पाकिस्तान के जन्मदाता जिन्ना साहव की माता ब्राह्मणी थी। ऐसे वहुत-से उदाहरण हैं। समाज के अग्रणी ब्राह्मणवर्ग एवं तत्कालीन राजाओं को यह नहीं सूझा कि धर्म का सम्वन्ध वाह्य शरीर से कम तथा सूक्ष्म शरीर से अधिक है। जवरदस्ती किसी के मुँह में गोमांस ठूँसे जाने से ही कोई धर्मभ्रष्ट नहीं हो जाता। स्त्रियों के साथ वलात्कार करने से ही वे पतित नहीं हो जातीं जवकि शास्त्रों में यह विधान है कि स्त्री को रजोदर्शन के वाद और यदि वलात्कार के फलस्वरूप गर्भ रह जाए तो उसकी उत्पत्ति के पश्चात् शुद्ध हो जाती है। सुनते हैं अकवर हिन्दू वननेवाला था परन्तु वीरवल ने मूर्खतापूर्ण उदाहरण देकर मना कर दिया। यह अक्षम्य अपराध था, जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता। विधर्मियों के मुख तथा पेट इतने वड़े हैं कि उनको सव हज़म हो जाता है और हमारे हृदय इतने संकुचित तथा उदर इतना दुर्वल है कि अपने भाईयों को ही पुनः अपने में नहीं मिला पाते। यही क्रम वना रहा तो निकट भविष्य में आर्यजाति अल्प संख्यक हो जाएगी, इसमें सन्देह नहीं।

१०- आपस की फूट

यह रोग भी महाभारत के समय से ही लगा हुआ है। कौरव-पाण्डवों की परस्पर कलह से भयंकर युद्ध हुआ। सुरापान से यादव परस्पर लड़कर मर गये। मौसेरा भाई होने पर भी जयचन्द ने पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिए मुहम्मद गौरी को निमन्त्रण दिया। पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों और जाट राजा सूरजमल की नहीं वनी। राजा सूरजमल का छापामार युद्ध का प्रस्ताव ठुकराने पर वह रात में ही चुपचाप सेनासहित भरतपुर लौट गया। मराठों को महर्ती क्षति उठानी पड़ी, अन्यथा भारतवर्ष का इतिहास कुछ और ही होता। इस बात की

अनेक साक्षियाँ हैं कि परस्पर की फूट ने ही अधिकतर विदेशियों को विजय दिलवाई। **"इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से"**। इसके अतिरिक्त युद्धनीति का अभाव, सहिष्णु प्रवृत्ति, केवल उदरपूर्ति तथा स्वार्थ इत्यादि और भी अनेक कारण हैं जिनकी चर्चा कहाँ तक की जाए?

नश्तर को लेकर हाथ में फ़स्साद ने कहा।
नत-नस में जख्म है लगाऊँ कहाँ-कहाँ।

१२- आर्यसमाज

आर्यसमाज क्या कोई मत, सम्प्रदाय या देश-विदेश से सम्बन्धित संस्था है? इसका उत्तर देते हुए एक विचारक ने कहा है कि आर्यसमाज न तो कोई मत है और न वाद में लिपटा हुआ सिद्धान्त। यह एक सुसंगठित, सुनियोजित, क्रान्तिकारी आन्दोलन है जिसका लक्ष्य विश्व के सभी मतों, वादों और मानव-मानव के बीच खड़ी भेद-भाव की दीवारों को समाप्त करना है। आर्यसमाज संसार में अन्याय और अज्ञान के खिलाफ वैचारिक क्रान्ति का मूलमन्त्र है, जिसका लक्ष्य मानवमात्र की उन्नति करना है।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती स्वमन्तव्यामन्तव्य में कहते हैं - "मैं अपना मन्तव्य उसी को मानता हूँ जो तीन काल में सबको एक-सा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है।" इस तथ्य की पुष्टि अन्तिम पृष्ठ पर दिये गये आर्यसमाज के नियमों पर दृष्टिपात करने से होती है। इनमें पहले दो नियम ईश्वर के सम्बन्ध में हैं। ईश्वर सृष्टिकर्त्ता और वेदज्ञान का प्रकाशक है, उसी की उपासना करनी चाहिए।

तीसरे, चौथे और पाँचवें नियम में व्यक्तिगत जीवन की उन्नति के लिए वेद का पढ़ना, पढ़ाना, सत्य का ग्रहण और प्रत्येक कार्य सत्यासत्य का विचार करके

करने का विधान है। अन्तिम पाँच नियम सामाजिक जीवन को व्यवस्थित रूप में चलाने के लिए हैं। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि आर्यसमाज के नियम व्यक्ति, समष्टि और परमसत्ता को साथ लेकर चलते हैं।

आर्यसमाज के मन्तव्य

आर्यसमाज के मन्तव्य वेद पर आधारित हैं। जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं -

१- एकेश्वर :

समस्त जगत् का उत्पादक, स्थापक और संहारक एक ईश्वर ही है। इसके अतिरिक्त कोई दूसरा या तीसरा अथवा अन्य कोई देवी-देवता उसका सहायक नहीं है। वह निराकार, सर्वशक्तिमान् है। जो जैसा कर्म करेगा उसको वैसा ही फल मिलेगा, यह उसका अटल नियम है। जीवों के पुण्य-पाप का फल देने से वह न्यायकारी है।

२- वेद :

वेद ईश्वर की वाणी है जो सृष्टि के आदि में मानवमात्र के लिए चार ऋषियों के हृदय में प्रकट हुई। अग्नि ऋषि को ऋग्वेद, वायु को यजुर्वेद, आदित्य को सामवेद और अथर्वा अंगिरा को अथर्ववेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। इन चारों ऋषियों से ब्रह्मा ने वेद पढ़े और पुनः सर्वत्र वेद का पठन-पाठन प्रचलित हुआ। मानवमात्र के लिए समस्त ज्ञान-विज्ञान, विद्या और व्यवहार, धर्म-अधर्म, कर्त्तव्यादि का निर्देश वेद में दिया है। इनमें किसी देशविशेष या कालविशेष का नाम नहीं है। अन्य ऋषि लोगों ने इन मन्त्रों का साक्षात् करके उनका प्रचार किया इसी कारण आदरार्थ उन सूक्तों के द्रष्टारूप में उनका नाम आता है।

३- त्रैतवाद :

आर्यसमाज वेदानुसार ईश्वर, जीव व प्रकृति तीनों को नित्य मानता है।

ईश्वर जीवों के कर्मफल का भोग देने तथा मुक्ति के लिए प्रकृति से सृष्टि की रचना करता है। प्रकृति जड़ होने से स्वयं जगद्रूप में परिणत नहीं हो सकती। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र है। अविद्या के कारण जन्म-मरण के बन्धन में पड़ा हुआ जीव मुक्ति के साधन-शम, दम, विवेक, वैराग्य व योगाभ्यास द्वारा मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

४- कर्मफल :

किये हुए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। ईश्वर का नाम लेने, क्षमा माँगने या तीर्थों पर भ्रमण करने से पाप क्षमा नहीं हो सकते। हाँ, प्रायश्चित करने और उन्हें आगे न करने का निश्चय करने से उनका और सञ्चय नहीं होगा। जो जैसा कर्म करता है उसे वैसा फल अवश्य ही मिलेगा।

५- पुनर्जन्म :

वृत्तियों के अनुसार कर्म और कर्मो से संस्कार बनते हैं। संस्कारों का सूक्ष्म रूप वासना है। इन्हीं वासनाओं के अनुसार जीव को अगला जन्म मिलता है। पुनर्जन्म पाकर वह जीव पहले के संस्कारों से प्रभावित होकर वैसे ही कर्म करता है और वृत्ति संस्कार, कर्म वासना, जन्म का चक्र चलता ही रहता है- जैसे रहट की माला में एक वाल्टी सामने आती है, उसमे भरा हुआ पानी गिरता है, पुनः दूसरी, तीसरी और फिर पहली। इसी भाँति जब तक मोक्ष के साधनों से इस वृत्ति-कर्म-संस्कार के चक्र को तोड़ा नहीं जाए तब तक जीव जन्म-मरण के चक्र में पड़ा ही रहता है। कर्मफल के अनुसार जीव को विभिन्न योनियों में जाना पड़ता है। मुक्त होने पर भी वह निर्धारित समय तक मुक्ति-सुख का उपभोग करने के पश्चात् पुनः संसार में वापस आता है।

६- वर्णाश्रम व्यवस्था :

मानव जीवन को पुरुषार्थ चतुष्टय प्राप्त्यर्थ चार आश्रमों में विभक्त किया हुआ है। विद्या, धर्म, शरीर, आत्मा और बौद्धिक विकास के लिए २५ वर्ष तक

ब्रह्मचर्याश्रम, समस्त विद्या पढ़कर धर्मपूर्वक विवाह करके सांसारिक कार्यों के लिए २५ से ५० वर्ष तक गृहस्थाश्रम, पुत्र के भी पुत्र हो जाने पर ५० वर्ष के पश्चात् पुनः तप एवं विद्या की वृद्धि हेतु वानप्रस्थाश्रम और ७५ वर्ष से शेष आयुपर्यन्त संन्यास आश्रम का विधान किया है। इसी भाँति समाज के सभी कार्य सुचारु रूप में चलाने के लिए वर्ण निश्चित किये गये हैं। इनमें विद्या पढ़ाना ब्राह्मण वर्ण का, राज्य कार्य क्षत्रिय का, कृषि, व्यापार एवं धनार्जन वैश्य का और सेवा का कार्य शूद्र का है। ये वर्ण जन्म से न होकर गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार गुरुकुलों में विद्याध्ययन के पश्चात् योग्यतानुसार निर्धारित किये जाते थे। प्रत्येक वर्ण को उन्नति करके उच्च वर्ण में आने का अधिकार है। आर्यसमाज इस वेद-शास्त्रोक्त सिद्धान्त में विश्वास रखता है।

७- स्त्री-शिक्षा :

परमात्मा की वाणी 'वेद' मानवमात्र के लिए है। उसे स्त्री, पुरुष सभी पढ़कर तदनुसार आचरण कर सकते हैं। लड़कों के समान लड़कियाँ भी विद्या पढ़ने की अधिकारिणी हैं। बिना स्त्री शिक्षा के योग्य सन्तानों का निर्माण नहीं हो सकता। शंकराचार्य एवं बाद के अन्य आचार्यों का यह कथन कि स्त्री, शूद्र वेद नहीं पढ़ें, कपोलकल्पित है।

८- संस्कार :

गुणों की अभिवृद्धि करना ही संस्कार कहलाता है। बालक के गर्भ में आते ही उसकी पुष्ट्यर्थ गर्भाधान, पुंसवन, गर्भवती के स्वास्थ्य एवं मानसिक आरोग्यता के लिए सीमन्तोन्नयन, बच्चा उत्पन्न होने पर जातकर्म और पश्चात् नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन तथा चूड़ाकर्म संस्कारों को किया जाता हैं जब वह ५ या ८ वर्ष का हो जाए तो उपनयन संस्कार करके विद्याध्ययन के लिए गुरुकुल में प्रविष्ट करवा दिया जाता है। वहाँ गुरु उसका वेदारम्भ संस्कार करता है। पूर्ण विद्या पढ़ने के पश्चात् पुनः गृहस्थाश्रम में प्रवेश के लिए गुरु समावर्तन संस्कार करके उसे गृहस्थाश्रम की अनुमति प्रदान करता है। माता, पिता व सम्बन्धी घर

आने पर योग्य कन्या के साथ सम्बन्ध निश्चित करके विवाह का उत्तरदायित्व पूर्ण करते हैं। गृहस्थ में वह विविध कर्त्तव्य कर्मों को धर्मपूर्वक करता हुआ पुत्रों को अपनी ज़िम्मेदारी देकर वानप्रस्थाश्रम में प्रविष्ट होता है, पुनः संन्यास का ग्रहण और मृत्यु के समय अन्त्येष्टि संस्कार किया जाता है। यही प्राचीन वैदिक प्रथा है। आर्यसमाज इन सोलह संस्कारों को मान्यता देता है।

९- शुद्धि :

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' सारे संसार को आर्य बनाओ। वेद के इस सन्देश के अनुसार जो लोग भूल से या बलपूर्वक विधर्मी बना लिये गये हैं, उन्हें पुनः वैदिक धर्म में लाना आर्यसमाज का दृढ़ संकल्प है। स्वामी श्रद्धानन्दजी के प्रयत्नों से लाखों मलकाने राजपूतों की आगरा-क्षेत्र में शुद्धि हुई। हरियाणा में मूले जाट, पञ्जाब में मेघ, ओड़ तथा रहमतिये शुद्ध किये गये। अब भी आदिवासी क्षेत्रों में शुद्धि का यह आन्दोलन चल रहा है।

१०- राष्ट्रीय एकता :

आर्यसमाज का यह दृढ़ विश्वास है कि जब तक भाषा, धर्म, संस्कृति और सभ्यता एक नहीं होगी तब तक राष्ट्र में एकता, सुख-शान्ति और प्रगति नहीं हो सकती।

इन मान्यताओं का आधार मानकर अपने प्रारम्भ काल में आर्य समाज ने स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य कार्य किये। धार्मिक क्षेत्र में मूर्ति-पूजा छुड़वाना, अवतारवाद का खण्डन, मृतक श्राद्ध, कब्रपूजा तथा तीर्थविशेष पर जाकर मुक्ति या पाप छूटने की भ्रान्त धारणाओं पर प्रबल कुठाराघात किया।

आर्यजाति में फैली बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, अनमेल-विवाह, छुआछूत, भूत-प्रेत, अन्धविश्वास जैसी कुरीतियों का निवारण करने के लिए प्रचार अभियान चलाया।

स्त्री-जाति की शिक्षा के लिए कन्या-पाठशाला और अनेक कन्या-गुरुकुल खोले गये।

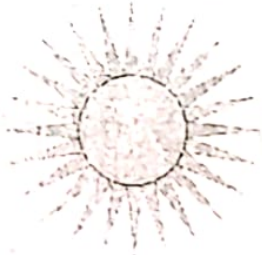
स्वाधीनता संग्राम का शंखनाद सर्वप्रथम स्वामी दयानन्दजी ने ही किया। उनके पश्चात् पं श्यामजी कृष्ण वर्मा, पं रामप्रसाद विस्मिल, लाला लाजपतराय, सरदार भगतसिंह आदि क्रान्तिकारी आर्यसमाज की ही देन हैं। काँग्रेस में ८० प्रतिशत आर्यसमाजी ही थे।

स्वदेशी वेष-भूषा, आचार, व्यवहार, हिन्दी भाषा एवं गोरक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज का अपूर्व योगदान रहा।

शिक्षा के क्षेत्र में आर्यसमाज द्वारा सञ्चालित गुरुकुल, डी०ए०वी० विद्यालय, कन्या पाठशालाएँ, अनाथाश्रम, विधवा-आश्रम, व्यायामशालाएँ जिनकी वर्तमान संख्या सहस्त्रों में है, आज भी सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं।

जब भी देश पर संकट के बादल आये हैं तो आर्यसमाज ने सबसे पहले सेवा, सुरक्षा और राहत केन्द्रों की स्थापना की है।

संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि आर्यसमाज राष्ट्र का सजग प्रहरी, वैदिक संस्कृति का रक्षक, वेदों का उद्धारक, स्त्री-जाति के समान अधिकारों का समर्थक, विछुड़े भाइयों को गले लगानेवाला, मानवमात्र को समान समझकर उनसे उचित व्यवहार करनेवाला और प्रगतिशील संगठन है, जिसका द्वार सभी के लिए खुला हुआ है।



शारीरिक पाठ्यक्रम प्रथम श्रेणी (आर्यवीर)

पूर्णांक - ८५० **उत्तीर्णांक - ३३०**

१- सर्वांगसुन्दर व्यायाम - ५०

१- भुजबल विकासक, २- वक्ष विकासक, ३- स्कन्ध शक्ति विकासक, ४- मिश्र हस्त, ५- कटिनमन ६-कटि विकर्षण, ७- कटिनमन-२, ८- गरुडोड्डीन, ९- शिरोहस्तनति, कूर्दन ताल।

२- दण्ड बैठक - ५०

दण्ड - सज्ज, स्थिति, उपविश, विश्रमः, तिष्ठ, प्रारभस्व, हाथों में छाती जितना अन्तर लेकर बैठना।

१- साधारण दण्ड, २- पार्श्व दण्ड, ३- वृश्चिक दण्ड, ४- हनुमान् दण्ड, ५- राममूर्ति दण्ड, ६- सिंह दण्ड, ७- पलट दण्ड, ८- सर्प दण्ड। -२५

बैठक- नाप लो, दोनों पैरों का अन्तर ६-९ इञ्च, दोनों पैर समानान्तर रहेंगे।

१- साधारण बैठक, २- सपाट बैठक, ३- पहलवानी बैठक, ४- राममूर्ति बैठक, ५- पवित्रा बैठक, ६- लेहरा बैठक, ७- हनुमान् बैठक-१, ८- हनुमान बैठक-२ । -२५

विशेष - आर्य वीरांगनाओं के लिए दण्ड-बैठक का अभ्यास वर्जित है। उन्हें सूर्य नमस्कार और भूमि नमस्कार करना चाहिये।

३- नियुद्धम् प्रथम श्रेणी पीत पद भाग - १ - १००

हस्त प्रहार

१- त्रिदेश मुष्टि-प्रहार (थ्री स्टायल पञ्च)
२- त्रिदेश युगपत् मुष्टि-प्रहार (डबल पञ्च)
३- त्रिगुण मुष्टि-प्रहार (ट्रिपल अटैक)
४- अर्द्ध मुष्टि-प्रहार (हाफ पञ्च दोनों हाथों से)
५- अर्द्ध मुष्टि-प्रहार (एक हाथ से)

६- संयुक्त मुष्टि-प्रहार (डवल वैलेन्स पञ्च दोनों ओर)
७- विलोम पार्श्व मुष्टि-प्रहार (रिवर्स साइड पञ्च)
८- षड्विध मुष्टि-प्रहार (सिक्स स्टायल पञ्च)
९- व्याघ्रपद-प्रहार (टाइगर क्लेप पञ्च)
१०- व्याघ्रनख-प्रहार (टाइगर पिन पञ्च)
११- सर्पमुख-प्रहार (स्नेक पञ्च)
१२- श्येन-प्रहार (ईगल पञ्च)
१३- युगपत् हस्ततल-प्रहार (डबल रिवर्स क्लैप पञ्च)
१४- अंगुलि भल्ल-प्रहार (फिंगर चाप)
१५- त्रिपद मुष्टि-प्रहार (थ्री स्टैपिंग फ्रण्ट वैक पञ्च) -३०

पदाघात (किक)

१- पुरः पदाघात (फ्रण्ट किक)
अधः, मध्य एवं ऊर्वभाग में पादाग्र (पञ्जे) से प्रहार करना एवं सुरक्षा
२- पार्श्व पदाघात (साइड किक)
(क) कीवेदाची (अश्वारोही) स्थिति में दाहिने बायें प्रहार करना
(ख) एक कदम दाहिने या बायें (आगे पीछे से) लेकर पदाघात
(ग) दो कदम आगे लेकर पुनः पार्श्व पदाघात
३- पृष्ठे पदाघात (बैक किक, एड़ी से पेट या मुख पर मारना) - ४०

सुरक्षा (ब्लाक)

१- ऊर्ध्वदेश सुरक्षा (अपर ब्लाक)
२- मध्यदेश सुरक्षा (मिडिल ब्लाक)
(क) बाह्यपसारणम् (आउट साइड ब्लाक)
(ख) आभ्यन्तरापसारणम् (इन साईड ब्लाक)
३- अधोदेश सुरक्षा (लोअर ब्लाक)
४- उपर्युक्त प्रहारों तथा पदाघातों को रोकने का अभ्यास। -१०

५- आत्मरक्षा-एक हाथ पकड़ने पर छुड़ाना और प्रत्याक्रमण -२०

४- आसन प्राणायाम क्रिया - १००

आसन- १- शीर्षासन, २- शवासन, ३- उत्तानपादासन, ४- सर्वांगासन, ५- मत्स्यासन, ६- हलासन, ७- मकरासन, ८- भुजंगासन, ९- शलभासन, १०- धनुरासन, ११- दण्डासन, १२- पश्चिमतानासन, १३- वक्रासन, १४- अर्धमत्स्येन्द्रासन, १५- वज्रासन, १६- सुप्तवज्रासन, १७- मयूरासन, १८- चक्रासन, १९-ताड़ासन, २०- योगमुद्रा। -४०

बन्ध - मूलवन्ध, उड्डीयान वन्ध, जालन्धर वन्धों का अभ्यास। -१०

प्राणायाम - १- नाड़ीशुद्धि के ४ भेद, २- वाह्य प्राणायाम, ३- सूर्यभेदी। - २५

क्रिया - कपालभाति, जलनेति, सूत्रनेति का क्रियात्मक अभ्यास। - २५

५- सैनिक शिक्षा - १००

१- सामने बायें, दाहिने हाथ के संकेत से पंक्ति वनवाना, दल, सज्ज, दक्षिणतो मिल, सम्मुखः, एक पंक्तिः, क्रमशः संख्या, द्वयोः संख्या, त्रिषु संख्या।

२- दो, तीन, चार पंक्ति वनवाना, पंक्ति द्वयम्, पंक्ति त्रयम्, पंक्ति चतुष्टयम्।

३- वामतः, दक्षिणतः, पृष्ठे, पुरो-यास्यति। वामं, दक्षिणं पृष्ठे-भ्रम।

४- एकपात्, द्विपात्, त्रिपात्, चतुष्पात्-वामं, दक्षिणं, पृष्ठे, अग्रे-चल।

५- वामार्द्धं, दक्षिणार्द्धं-भ्रम। - ३०

६- संचलनम् (मार्चिंग)। - ३०

त्रिषु वामतः क्षिप्रं चल, शनैश्चल, धावन् चल या धाव। चलते हुए - लम्बपादः, लघुपादः, पादपरिवर्तनम्, दक्षिणचक्रम्, वामचक्रम्, वामं भ्रम, दक्षिणं भ्रम, पृष्ठे भ्रम, पादतालः, अग्रेसर, तिष्ठ।

७- ध्वजारोहण, ध्वजावतरण का अभ्यास। -३०

वर्गनायक स्वस्थानम्, शेष आर्यवीर अनुसरत, उपवर्गनायक संख्या, गायक, वादक, ध्वजस्थानम्, ध्वजगानं, प्रारभस्व, नमस्ते, विकिर। आज्ञा देते समय दल नाम से सम्वोधित किया जाएगा।

८- सभाओं में वैठने तथा अधिकारियों से वार्तालाप करने का ढंग। - १०

६- दण्ड (लाठी) - १००

आज्ञा- भुजदण्डः, दण्डसज्ज, दण्डविश्रमः, प्रारभस्व, तिष्ठ।

१- प्रहार (मार हाथ), मार चाल।

२- सुरक्षा (रोक हाथ), रोक चाल।

३- दो दिक् प्रहार (आगे दो मार, पीछे दो रोक)।

४- रणमार वार्यी ओर से पीछे आगे मारना।

५- रणमार दाहिनी ओर से आगे पैर वढ़ाकर आगे मारना, पीछे पैर लेते हुए बार्यी ओर से मारना।

६- रणमार चाल-दाहिनी ओर से आगे वढ़ना, पीछे आना।

७- रणमार उड्डीन-आगे पीछे।

८- रणमार बैठी। - ५०

इसी भाँति कुक्षी मार का अभ्यास करना।

द्वन्द्व - १- शिर पर मारना, रोकना।

२- शिर, कान, कमर, गट्टा मार, रोक।

३- बार्यी कनपटी, दाहिनी कनपटी, हूल, शिरमार, रोक। - ५०

७- शूल - ५०

आज्ञायें - स्कन्धशूलम्, अधःशूलम्, भूमिशूलम्, सज्जितशूलम।

१- शूल सञ्चालन के ५ व्यायाम। - २०

२- दो दिक्च्छेद - १ पीछे कुन्दा (बट) आगे अणी मारना।

३- दो दिक्च्छेद - २ पदग्राह (घसर) के साथ कुन्दा अणी मारना, दोनों दिशाओं में।

४- आगे अणी और कुन्दा मारना, दोनों दिशाओं में अभ्यास।

५- आगे अणी (घोप निकाल) करते हुए आगे बढ़ना। -३०

८- क्षुरिका - ५०

१- कूर्पर वन्ध - १, २ व ३

२- मणिवन्ध मोटन (कलाई मरोड़) - १ व २

३- कूर्पर भग्न - १ व २

४- पादप्रहार-१- बायें हाथ पर वार रोक कर उसे मरोड़ते हुये पीछे जाना, दाहिनी किक पेट में मारना।

५- पादप्रहार-२-नीचे बार्यां ओर भूमि पर हाथ टिकाकर दाहिनी किक तथा सामने झुकना और कोहनी मारना

६- पादप्रहार-३-(पार्श्वभाग से) सामने ऊपर से आये प्रहार को बायें दाहिने झुककर खाली करना तथा अपने दाहिने या बायें पैर से प्रहार करना।

९- क्रीड़ाएँ - ५०

१- नेता की तलाश, गोल खो, लंगड़ी, मेंढक-मच्छर, शेर-बकरी, साँप-नेवला, रुमाल झपट, कुक्कुट-युद्ध, स्कन्ध-युद्ध, डण्डा दौड़ तथा अन्य देशीय क्रीड़ाओं का अभ्यास।

१०- अनुशासन - ५०

१- शिविर काल में प्रत्येक आर्यवीर को शिविर के नियमों का पालन करना अनिवार्य है। -१०

२- समुचित गणवेश, सफाई व्यवस्था, कर्त्तव्यपालन एवं उपस्थिति का प्रतिदिन निरीक्षण किया जाएगा। -३०

३- परस्पर वार्तालाप, अधिकारियों से शिष्ट व्यवहार, विनम्रता की सभी आर्यवीरों से अपेक्षा की जाती है। -१०

११- बौद्धिक लिखित १-६ विषय तथा अन्य प्रवचन - १००

मौखिक - ५०

सैद्धान्तिक, सामान्य ज्ञान एवं प्रेरक जीवन से जीवन चरित्रों का परिचय

बौद्धिक शिक्षक सायंकाल प्रेरक जीवन के प्रसंग सुनाये और प्रश्न पूछे।

★ ★ ★

शारीरिक पाठ्यक्रम द्वितीय वर्ष (शाखा नायक)

पूर्णांक - ९०० **उत्तीर्णांक - ३५० कुल योग में ४० प्रतिशत**

१- सर्वांग सुन्दर व्यायाम - ५०

१- मणिबन्ध शक्ति विकासक

२- हस्तपाद शक्ति विकासक
३- हस्तस्कन्ध शक्ति विकासक
४- मिश्रहस्त,
५- नति (बैठक)
६- कुक्षी शक्ति विकासक
७- कुक्षी शक्ति विकासक-२,
८- जानुशक्ति विकासक
९- पादशक्ति विकासक -१
१०- कूर्दन ताल

२- दण्ड बैठक - ५०

१- पार्श्व दण्ड द्वितीय अभ्यास
२- वृश्चिक दण्ड द्वितीय अभ्यास
३- हनुमान दण्ड द्वितीय अभ्यास
४- बक दण्ड
५- चक्र दण्ड
६- चक्र दण्ड द्वितीय अभ्यास
७- वानर दण्ड
८- मिश्र दण्ड -४०

वैठक

१- हनुमान् वैठक-३
२- हनुमान् वैठक-४
३- घुटना मरोड़ वैठक
४- चल वैठक -१०

३- आसन-१००

१- पवनमुक्तासन
२- चक्रासन (भूमि पर लेटकर)
३- नौकासन
४- पादांगुष्ठासन
५- जानुशिरासन
६- सिद्धासन
७- पद्मासन
८- स्वस्तिकासन
९- गोमुखासन
१०- हस्तपादांगुष्ठासन
११- गरुड़ासन
१२- अश्वत्थासन
१३- नटराजासन
१४- वातायनासन
१५- शिथिलासन
१६- शवासन-५०

प्राणायाम - १- उज्जायी, २- शीतली, ३- भस्त्रिका, ४- भ्रामरी। - २५

क्रिया- १- वमन धौति (कुञ्जल क्रिया) दण्ड धौति, अग्निसार, नौली क्रिया। - २५

४- नियुद्धम् द्वितीय श्रेणी पीत पद भाग-२ - १५०

हस्त प्रहार

१- वक्रमुष्टि-प्रहार (हुकिंग पञ्च, पार्श्व-ऊर्ध्वसुरक्षा, प्रहार)
२- अवक्रमुष्टि-प्रहार (स्ट्रेट पञ्च, हाथ बदलकर बारी-बारी से)
३- त्रिदिक् मुष्टि-प्रहार (टी स्टायल पञ्च, आगे, पार्श्वभाग में)
४- पृष्ठे मुष्टि-प्रहार (बैक पञ्च दाहिने बायें, पैंतरा बदल कर पीछे)
५- युगपत् पृष्ठे मुष्टि-प्रहार (नितम्ब, कोहनी का प्रहार, मुष्टि-प्रहार)
६- कूर्पर-प्रहार (एल्बो अटेक २ कोहनी पार्श्व में, २ नीचे से ऊपर)
७- त्रिविध कूर्पर-प्रहार (आगे, पार्श्व एवं पीछे कोहनी मारना)
८- हस्त-तलाग्र-प्रहार (चाप मारना, चाप, रिवर्स, बैक रिवर्स चाप)
९- नत-प्रहार (अण्डर कट-२ पार्श्व, २ नीचे से ऊपर ठुड्डी)
१०- जानु प्रहार - २०।

पदाघात (किक मारना)

१- झम्पसहित पुरःपदाघात (जम्पिंग फ्रण्ट किक)
२- झम्पसहित पार्श्वपदाघात (जम्पिंग साइड किक)
३- परिभ्राम्य पादाग्र-प्रहार (स्पिन किक)
४- परिभ्राम्य पाद तलाग्र-प्रहार (राउण्ड होस किक)
५- विलोम पादाग्र-प्रहार (स्विप् किक)
६- वाह्य पदाघात (आउट साइड किक)
७- आभ्यन्तर पदाघात (इन साइड किक)
८- पुरःपाद-तलाग्र-प्रहार (फ्रण्ट साइड किक)
९- पार्ष्णि-प्रहार (हील किक, एड़ी से मारना)
१०- अङ्घ्रि प्रहार।
११- विभिन्न पदाघातों को मिलाकर मारना, आगे बढ़ना, पीछे आना।-५०

सुरक्षा

अधःपदाघात (लोअर फ्रण्ट किक) से सुरक्षा

१- हस्ततल (हथेली) से दवाना (पुश ब्लाक)

२- हस्तातिक्रम्य सुरक्षा (हाथों को क्रास करके रोकना)

३- जानु (घुटने) को मोड़कर प्रहार को रोकना।

मध्य पदाघात (मिडिल किक) से सुरक्षा

१- बाह्यापसारणम् (आउट साइड ब्लाक)

२- आभ्यन्तरापसारणम् (इन साइड ब्लाक)

३- पार्श्वे अपसारणम् (दोनों हाथों से वाएँ दाहिने प्रहार को धकेल देना-साइड पुश)

४- पुश ब्लाक (प्रहार को नीचे की ओर दवा देना)

ऊर्ध्वपदाघात (अपर किक) से सुरक्षा

१- ऊर्ध्वसुरक्षा (अपर ब्लाक, हाथ को नीचे से ऊपर लेते हुए प्रहार को ऊपर उठाकर प्रतिपक्षी को गिरा देना)

२- तिर्यक् अपसारणम् (अपर आउट साइड ब्लाक)

३- दोनों हाथों से पार्श्व में या नीचे दबाते (पुश) हुए प्रहार को रोकना।

४- नीचे बैठना या पार्श्व में होकर प्रहार व्यर्थ करना।

पार्श्वपदाघात (साइड किक) से सुरक्षा

१- पार्श्वे अपसारणम् (प्रहार की दिशा में घूमकर दोनों हाथों से साइड पुश)

२- हस्ततल (हथेली) से नीचे दबाना (डाउन पुश)

३- जानु (घुटने को ऊपर उठाकर रोकना)

४- नीचे बैठकर या पीछे झुककर वार को खाली करना अथवा पीछे सरककर वार की सीमा से हट जाना।

द्वन्द्व

१- त्रिपद पवित्रा आगे चलकर ऊपर, मध्य, नीचे मुष्टि प्रहार करना एवं प्रतिपक्षी द्वारा रोकना।

२- षट्पद पवित्रा-पूर्ववत् मुख, पेट तथा अण्डकोष के ऊपर दाहिने-वायें हाथ

से प्रहार करते हुए आगे बढ़ना, पीछे हटते हुए उन्हें रोकना।

३- पवित्रा चलकर तीन प्रहार दाहिना, बायाँ, दाहिना मारना। रक्षक द्वारा इन्हें रोकना और प्रत्याक्रमण करना। (क) छाती पर प्रहार, रक्षक बायें हाथ से बाहर से भीतर रोके। तीसरी बार दाहिने हाथ की चाप आक्रामक की दाहिनी पसली पर मारे। (ख) पहले की भाँति प्रहार, रक्षक बायाँ पैर पीछे लेकर दाहिने हाथ से भीतर से बाहर सुरक्षा करे और कनपटी पर चाप मारे। (ग) मुख पर प्रहार, ऊर्ध्व सुरक्षा और पुनः दाहिना मुष्टि प्रहार मुख पर मारे। (घ) सामने आये प्रहार को बायीं हथेली से बाहर से भीतर को हटाना। रक्षक तीसरी बार दाहिनी चाप पेट पर मारे। (ङ) मुख पर आये प्रहार को रक्षक वायें हाथ को तिरछा नीचे से ऊपर लेते हुए चाप से ब्लाक करे और तीसरी बार दाहिनी नाक पर चाप मारे।

४- पुरःपदाघात एवं सुरक्षा - ५०

५- आत्मरक्षा - दोनों हाथों से एक हाथ तथा दोनों हाथ पकड़ने पर छुड़ाना। - ३०

५- सैनिक शिक्षा - १००

पूर्व आज्ञाओं को दोहराना, सञ्चलन का अभ्यास चलते हुए दाहिनी ओर अभिवादन करना। दल दक्षिणतो नमस्ते दक्षिणदृक्, पुरोदृक्। आर्यवीर को स्वयं आज्ञा देने का अभ्यास करवाना चाहिए, जिससे वह दैनिक शाखा का सञ्चालन कर सके। ५०+५०

६- दण्ड (लाठी)-१००

१- रणमार चौमुखी, बायीं ओर से

२- रणमार चौमुखी दायीं ओर से

३- रणमार तीन (तीन पीछे, तीन आगे)

४- रणमार चौक चौमुखी (एक कदम आगे, पौन चक्र)

५- बाना (अमरबेल)

६- रणमार छलांग चौमुखी।

७- जनेऊ प्रहार (दाहिना, बायां जनेऊ मारते हुए आगे बढ़ना)

८- जनेऊ प्रहार - २ (आगे मार, पीछे रोक) - ५०

द्वन्द्व

१- बैठक मार (गट्टा शिरमार, रोक)
२- ठुड्डी मार (दो ठुड्डी, हूल, शिरमार, रोक)
३- जनेऊ मार (सीधा, उलटा जनेऊ, हूल, शिरमार, रोक)
४- पवित्रा चलकर दो कनपटी, दो गट्टा मार। - ५०

७- शूल - ५०

१- द्वि दिक्च्छेद-३ (आगे बढ़ते जाना, पीछे आना)
२- अणी पलट
३- अणी पलट की चौमुखी
४- अणी बट की चौमुखी
५- चौमुखी चिरकाट पीछे बट, आगे घसर अणी, बट अणी, बायें पैर का पौन चक्र, शिर के ऊपर से शूल को घुमाना। - ४०
६- कदम बढ़ाकर चारों दिशाओं में अणी मारना (घोप निकाल का अभ्यास करना)
द्वन्द्व- दो छाती में अणी, दो गुर्दे में अणी मारना, रोकना। - १०

८- क्षुरिका - ५०

पार्श्व भागों में प्रहार, रोक

१- (लंगोटा (हस्ताकर्षण)
२- (कोहनी तोड़) कूर्परभग्न
३- (कन्धा चढ़ाना) स्कन्ध बन्ध
४- (छाती पर लादकर गिराना) वक्षनिपात
५- (छाती पर कोहनी रखकर बन्ध लगाना) भुजवक्ष बन्ध
६- पाद प्रहार
७- दाहिनी कुक्षी पर प्रहार
८- (कमर तोड़) कटि निपात

९- उदर निपात (स्टोमक थ्रो)
१०- (उल्टी पुट्ठी) नितम्ब निपात (हिप थ्रो)
११- वाम कुक्षी पर प्रहार रोक

९- क्रीड़ा-५०

जल-थल, सहायता, शक्ति-परीक्षण, घोड़ा कवड्डी, जादू की कुर्सी, घोड़ा लड़ाई, ध्वजरक्षा, आर्य-दस्यु, चक्रव्यूह, पताका एवं अन्य देशीय खेलों दौड़ने, ऊँचा कूदने, लम्बा कूदने का अभ्यास। २५ + २५

१०- अनुशासन - ५०

आर्यवीर का शिविर में रहने का ढंग, व्यवहार, शिष्टाचार, अनुशासन, सफाई, संगठन के प्रति निष्ठा, व्यक्तित्व आदि का निरीक्षण

११- बौद्धिक - १५०

बौद्धिक पाठ्यक्रम के ६-१२ विषय प्रेरक जीवन ११-२० तथा अन्य प्रवचन - १००

ध्वजगान, राष्ट्रगान, सन्ध्या। -५०

सायंकालीन मनोरंजन में प्रतिदिन एक महापुरुष के जीवन चरित्र को बौद्धिक शिक्षक आर्यवीरों को सुनायेगा तथा प्रश्न पूछेगा। यदि सम्बन्धित गीत भजन हैं तो वे भी गाने चाहियें।

बौद्धिक शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह सन्ध्या के मन्त्र, यज्ञ की विधि, ध्वजगान, राष्ट्रगान को आर्यवीरों को बोल कर स्मरण कराये और बौद्धिक विषयों का सारांश भी नोटबुक में लिखवाये।

सन्ध्या : यज्ञ

प्रातःकालीनमन्त्राः

ओ३म् । प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ।।१।।
प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ।।२।।
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ।।३।।
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ।।४।।
भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ।।५।।

सन्ध्या के मन्त्र



अथाचमनमन्त्रः

ओ३म् । शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ।।

अथेन्द्रियस्पर्शमन्त्राः

ओ३म् वाक् वाक् । ओ३म् प्राणः प्राणः । ओ३म् चक्षुश्चक्षुः ।
ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रम् । ओ३म् नाभिः । ओ३म् हृदयम् । ओ३म् कण्ठः ।
ओ३म् शिरः । ओ३म् बाहुभ्यां यशोबलम् । ओ३म् करतलकरपृष्ठे ।

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः.

ओ३म् भूः पुनातु शिरसि । ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठे । ओ३म् महः पुनातु हृदये । ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम् । ओ३म् तपः पुनातु पादयोः । ओ३म् सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

प्राणायाममन्त्राः

ओ३म् भूः । ओ३म् भुवः । ओ३म् स्वः । ओ३म् महः । ओ३म् जनः । ओ३म् तपः । ओ३म् सत्यम् ।

अघमर्षणमन्त्राः

ओ३म् । ऋतं च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः ।।१।।
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽअजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ।।२।।
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।३।।

आचमनमन्त्रः

ओ शन्नो देवीरभिष्टय ऽ आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ।।

अथ मनसा परिक्रमामन्त्राः

ओ३म् । प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।१।।
दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।। २ ।।
प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।३।।
उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।४।।

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।५।।
ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु ।
यो३स्मान्द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ।।६।।

अथोपस्थानमन्त्राः

ओ३म् । उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।।१।।
उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ।।२।।
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्यऽऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।।३।।
तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम
शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।।४।।

अथ गुरुमन्त्रः

ओ३म् । भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदात् ।।

अथ समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा
धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ।।

अथ नमस्कारमन्त्रः

ओ३म् । नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।।

सामान्य नित्य यज्ञ पद्धति

अथाचमनमन्त्राः

ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।।१।।
ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।।२।।
ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ।।३।।

अथांगस्पर्शमन्त्राः

ओ३म् वाङ् म आस्येऽस्तु ।
ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु।
ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।
ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।
ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु ।
ओ३म् ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु ।
ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः

ओ३म् । विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद् भद्रन्तन्न आ सुव ।।१ ।।
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।२।।
य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।३।।
यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।४।।
येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।५।।
प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।६।।
स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ।। ७।।
अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम ।।८।।

अग्न्याधानम्

ओ३म् भूर्भुवः स्वः ।
ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।।
ओ३म् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳ सृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ।।

समिदाधानम्

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध
वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।।
इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम ।।१।। इस मन्त्र से पहली
ओ३म् समिधाग्निं दुवस्यत धृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ।
इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम ।।२।। इससे और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा।
इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम ।।३।।
इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी
ओ३म् तन्वा समिद्धिरंगिरो घृतेन वर्द्धयामसि ।
बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा । इदमग्नयेऽङ्गिरसे - इदन्न मम ।।४।।
इस मन्त्र से तीसरी समिधा चढ़ाएँ

पंचघृताहुतिमन्त्रः

ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध
वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ।

इदमग्नये जातवेदसे - इदन्न मम ।।

जलसिञ्चनमन्त्राः

ओ३म् अदितेऽनुमन्यस्व । इससे पूर्व में
ओ३म् अनुमतेऽनुमन्यस्व । इससे पश्चिम में
ओ३म् सरस्वत्यनुमन्यस्व । इससे उत्तर दिशा में
ओ३म् देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ।।

इस मन्त्र से चारों ओर जल छिड़काएँ

आघारावाज्यभागाहुतिमन्त्राः

ओ३म् अग्नये स्वाहा ।। इदमग्नये - इदन्न मम ।।

इस मन्त्र से वेदी के उत्तर भाग अग्नि में

ओ३म् सोमाय स्वाहा ।। इदं सोमाय - इदन्न मम ।।

इससे दक्षिणभाग अग्नि में

ओ३म् प्रजापतये स्वाहा ।। इदमग्नये प्रजापयते - इदन्न मम ।।
ओ३म् इन्द्राय स्वाहा ।। इदमिन्द्राय- इदन्न मम ।।

इन दोनों मन्त्र से वेदी के मध्य में दो आहुति दें।

प्रातःकालीन-आहुतिमन्त्राः

ओ३म् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।।
ओ३म् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।
ओ३म् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।।
ओ३म् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ।।

प्रातः सायंकालीनमन्त्राः

ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा । इदमग्नये प्राणाय - इदन्न मम ।।
ओ३म् भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा । इदं वायवेऽपानाय - इदन्न मम ।।
ओ३म् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा । इदमादित्याय व्यानाय - इदन्न मम ।।

ओ३म् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ।
इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः-इदन्न मम ।।
ओ३म् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।।
ओ३म् यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।
तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।
ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव स्वाहा ।।
ओ३म् अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ।।

सायंकालीन-आहुतिमन्त्राः

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।
ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ।।
ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।।

इस मन्त्र को मन में वोलकर एक आहुति दें।

ओ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या ।
जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा ।।

स्विष्टकृत-आहुतिमन्त्रः

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्
अग्निष्टत् स्विष्टकृद् विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां
समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ।। इदमग्नये
स्विष्टकृते इदन्न मम ।।

प्राजापत्याहुतिमन्त्रः

ओं प्रजापतये स्वाहा ।। इदं प्रजापतये - इदन्न मम ।।

इस मन्त्र से मौन आहुति दें

पूर्णाहुतिमन्त्रः
ओं सर्वं वै पूर्ण ँ स्वाहा ।।

इस मन्त्र को तीन वार पढ़कर तीन आहुतियाँ दें।

यज्ञ-प्रार्थना

यज्ञरूप प्रभो हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल कपट को मानसिक बल दीजिए।।
वेद की बोलें ऋचाएँ सत्य को धारण करें।
हर्ष में हो मग्न सारे शोक-सागर से तरें।।
अश्वमेधादिक रचाएँ यज्ञ पर-उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को।।
नित्य श्रद्धा-भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग-पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें।
भावना मिट जाये मन से पाप अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नार की।।
लाभकारी हों हवन हर प्राणधारी के लिए।।
वायु-जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किये।।
स्वार्थभाव मिटे हमारा प्रेमपथ विस्तार हो।
'इदन्न मम' का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो।।
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे।
'नाथ' करुणारूप करुणा आपकी सब पर रहे।।

मंगल कामना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ।।

सबका भला करो भगवान् सबपर दया करो भगवान्।
सबपर कृपा करो भगवान्, सबका सब विधि हो कल्याण।।
हे ईश सब सुखी हों कोई न हो दुःखारी।
सब हों नीरोग भगवन् धनधान्य के भण्डारी।।
सब भद्र भाव देखें, सन्मार्ग के पथिक हों।
दुखिया न कोई होवे सृष्टि में प्राणधारी।।

राष्ट्रिय प्रार्थना

ओ३म् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।। - यजुः० २२।२२

राष्ट्रीय प्रार्थना का अर्थ

हे परमात्मन्! हमारे राष्ट्र में ब्रह्मतेज से तेजस्वी ब्राह्मण उत्पन्न हो।

बाण आदि अस्त्र-शस्त्र चलाने में निपुण, दूर तक निशाना बींधनेवाले तथा शत्रुओं को अत्यन्त पीड़ित करनेवाले, दस सहस्त्र सैनिकों से अकेले युद्ध करनेवाले महारथी शूरवीर क्षत्रिय उत्पन्न हो।

खूब दूध देनेवाली गौएँ उत्पन्न हों। भार ढोने में समर्थ वैल उत्पन्न हो। शीघ्रगामी घोड़े उत्पन्न हो। नगर एवं राष्ट्र को धारण करनेवाली स्त्रियाँ उत्पन्न हों। इस दिव्य प्रजाजन के शत्रुओं को विदीर्ण करनेवाला, शूरवीर, रथ में बैठनेवाला योद्धा जयशील, सभाओं में जाने योग्य, सभ्य, वोलने में कुशल युवा उत्पन्न हो।

हमारे लिए जब-जब हमारी कामना हो तव-तव बादल वर्षा करें। इच्छानुसार वृष्टि हो, अतिवृष्टि एवं अनावृष्टि न हो। हमारे लिए जौ आदि औषधियाँ बहुत अधिक फलवाली होकर पका करें तथा हमारे लिए अप्राप्त ऐश्वर्य की प्राप्ति और प्राप्त ऐश्वर्य की रक्षा एवं समृद्धि सिद्ध हो।

ध्वजगान

ध्वजेयं मुदा वर्धते व्योमवातैः समुड्डीयमानान्तरिक्षे विशाले ।
महामण्डले दीप्तदिव्यारुणाभे सुभासैर्रवेर्भासते-ओ३म् पताका ।।
प्रबुद्धार्यवर्तैकदेशे प्रशस्ता, समस्तार्यवीरैर्धृता या समन्तात् ।
पुरा ज्ञानज्योतिः प्रदत्तं पृथिव्यां, सुधावेदवाण्या नुता गीयते च ।।
समुद्धर्त्तुकामा वयञ्चार्यवीराः, समुत्थाप्यतां विश्वमेतत्प्रसुप्तम् ।
इयं सार्यराष्ट्रांगभूता ध्वजाऽऽस्ते, पराशक्तिरूपा दधातु स्वशक्तिम् ।।

महामंगले विश्वशान्त्यैकमूर्ते, सुकीर्तिः सदा वर्धतां ते प्रशस्या ।
समुद्घोषणा घोष्यते वीरघोषैः, विजेजीयतां नः पताकाऽपतापा ।।

ध्वजगान का अर्थ

यह ओ३म् पताका विशाल अन्तरिक्ष में आकाश में चलनेवाली वायु द्वारा उड़ायी जाती हुई सुशोभित होकर फहरा रही है।

प्रातःकाल उगते सूर्य के अरुण रंग से प्रकाशित विस्तृत आकाश मण्डल में फैली सूर्य की किरणों से इसकी शोभा और बढ़ गई है।

इस ध्वजा को प्राचीन काल में आर्यावर्त्त देश के समस्त आर्य वीरों ने अपने हाथों में लेकर सारे भूमण्डल को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित किया।

हम आर्यवीरों ने इस पताका को हाथ में लेकर सोये हुए (वेद ज्ञान से विहीन) संसार को जगाने का निश्चय किया है।

आर्यराष्ट्र में इस ध्वजा का विशिष्ट स्थान है। पराशक्ति को देनेवाली यह पताका हमें अपने ब्रह्म-तेज और क्षात्र-बलरूप शक्ति से युक्त करे।

हे महाकल्याणकारक विश्वशान्ति का सन्देश देनेवाली ओ३म् पताके! तेरी यशकीर्ति सदा बढ़ती रहे।

हम आर्यवीरों का यह प्रबल जयघोष है कि सकल पापों की निवारक इस ओ३म् पताका का सदैव विजय होता रहे।

भोजन के समय की प्रार्थना

ओ३म् अन्नपते अन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः ।
प्रप्र दातारं तारिषऽऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।

अर्थ- हे अन्न के स्वामिन् प्रभो! हमें अन्न दो जो रोगरहित और पुष्टिकारक हो। आप अन्नदाता का कल्याण करें। दोपाये (मनुष्यों) और चौपाये (पशुओं) में तेज धारण करो।

भोजन समाप्ति पर

ओ३म् मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्सतस्य।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ।।

अर्थ - मूढ़ अज्ञानी तो अन्न को व्यर्थ प्राप्त करता हैं सच कहंता हूँ वह उसका घातक ही होता है, क्योंकि वह न तो राजा का पालन करता है और न ही बन्धु का। सच तो यह है कि अकेला खानेवाला केवल पापमय होता है।

यज्ञोपवीत मन्त्र

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं वलमस्तु तेजः ।।१।।
ओ३म् यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ।।२।।

संगठन सूक्त

ओं सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ।। १ ।।
हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो वनाते सृष्टि को ।
वेद सव गाते तुम्हें हैं कीजिए धन-वृष्टि को ।।१।।
सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते ।।२।।
प्रेम से मिलकर चलो वोलो सभी ज्ञानी बनो ।
पूर्वजों की भाँति तुम कर्त्तव्य के मानी वनो ।। २।।
समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ।।३।।
हों विचार समान सवके चित्त मन सव एक हों ।
ज्ञान देता हूँ वराबर भोग्य पा सब नेक हों ।।३।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ।।४।।
हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा ।
मन भरे हों प्रेम से जिससे बढ़े सुख सम्पदा ।।४।।

ओ३म्

आर्यसमाज के नियम

१- सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२- ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

३- वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४- सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिएँ।

५- सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ।

६- संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७- सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८- अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९- प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

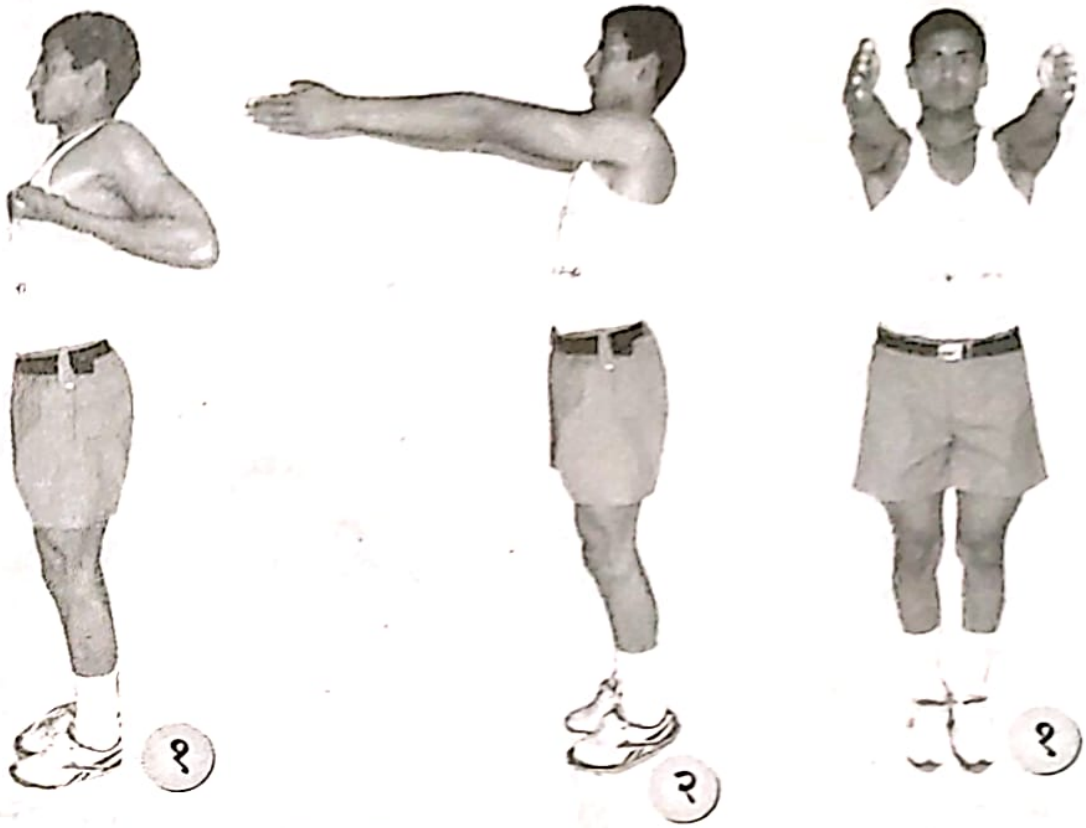
१०- सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

शान्तिपाठः

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।।

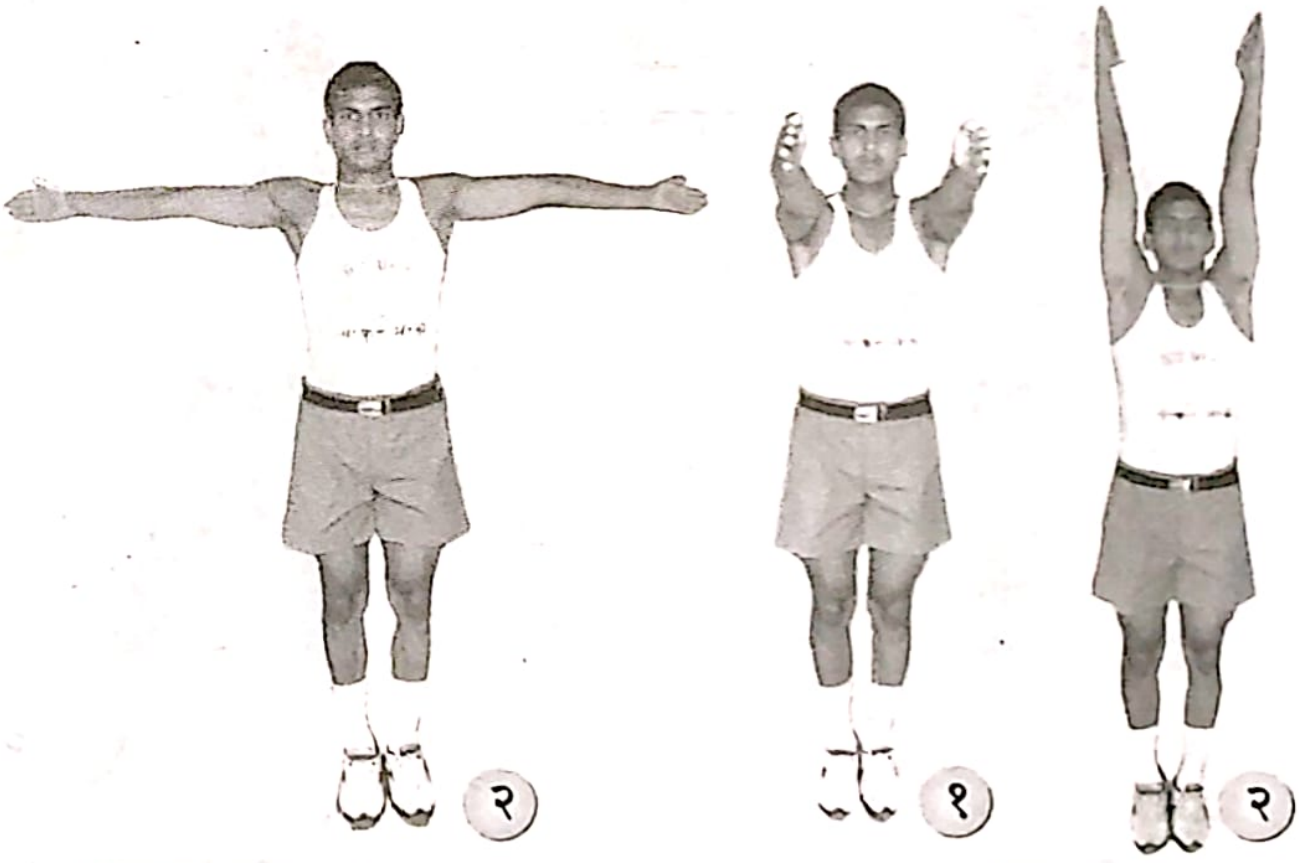
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

सर्वांग सुन्दर व्यायाम



भुजबल शक्ति विकासक

वक्ष विकासक



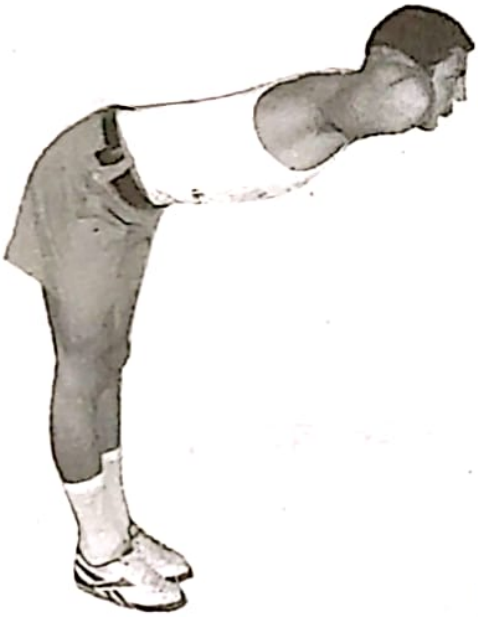
वक्ष विकासक

स्कन्ध शक्ति विकासक



१

मिश्रहस्त



कटिनमन-१



२

मिश्रहस्त



१

कटि विकर्षण

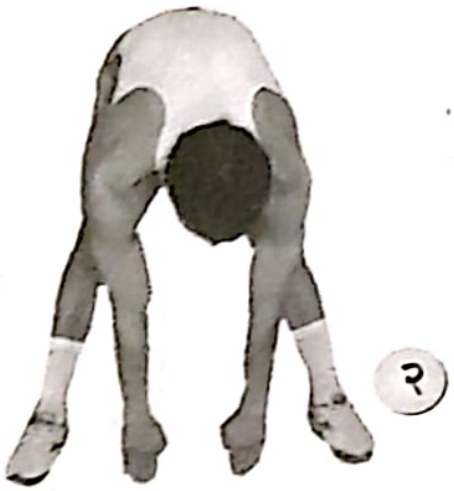


२

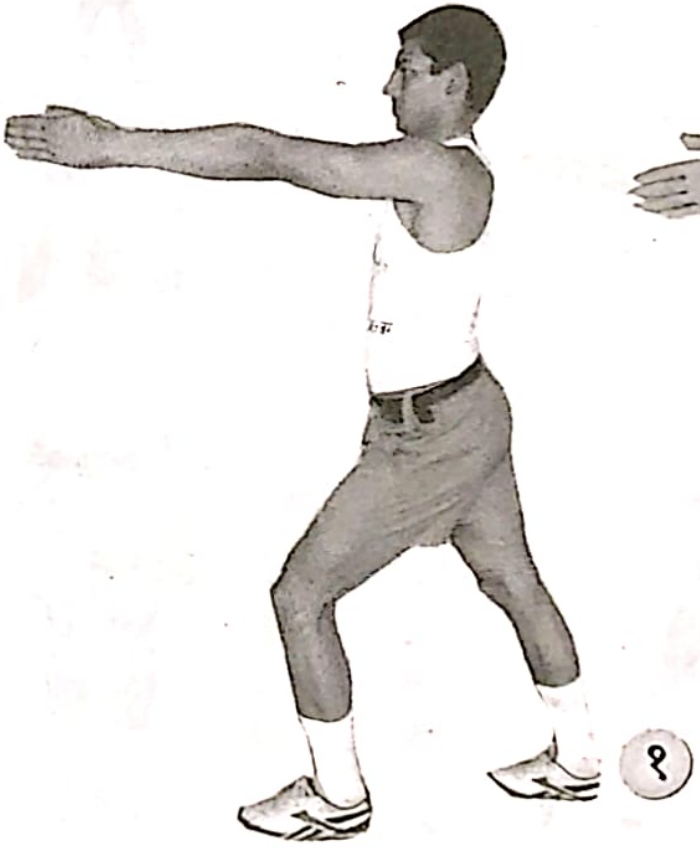
कटि विकर्षण



कटिनमन-२



कटिनमन-२



गरुडोड्डीन



गरुडोड्डीन



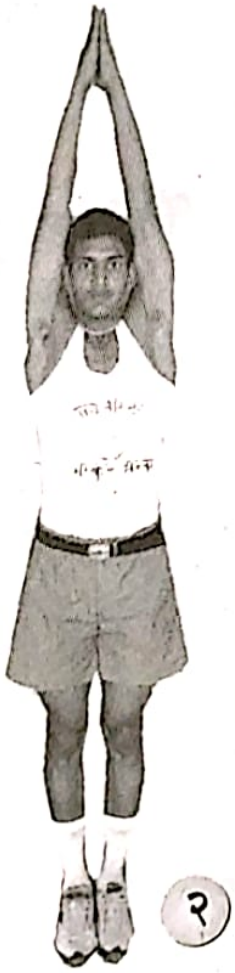
शिरोहस्तनति



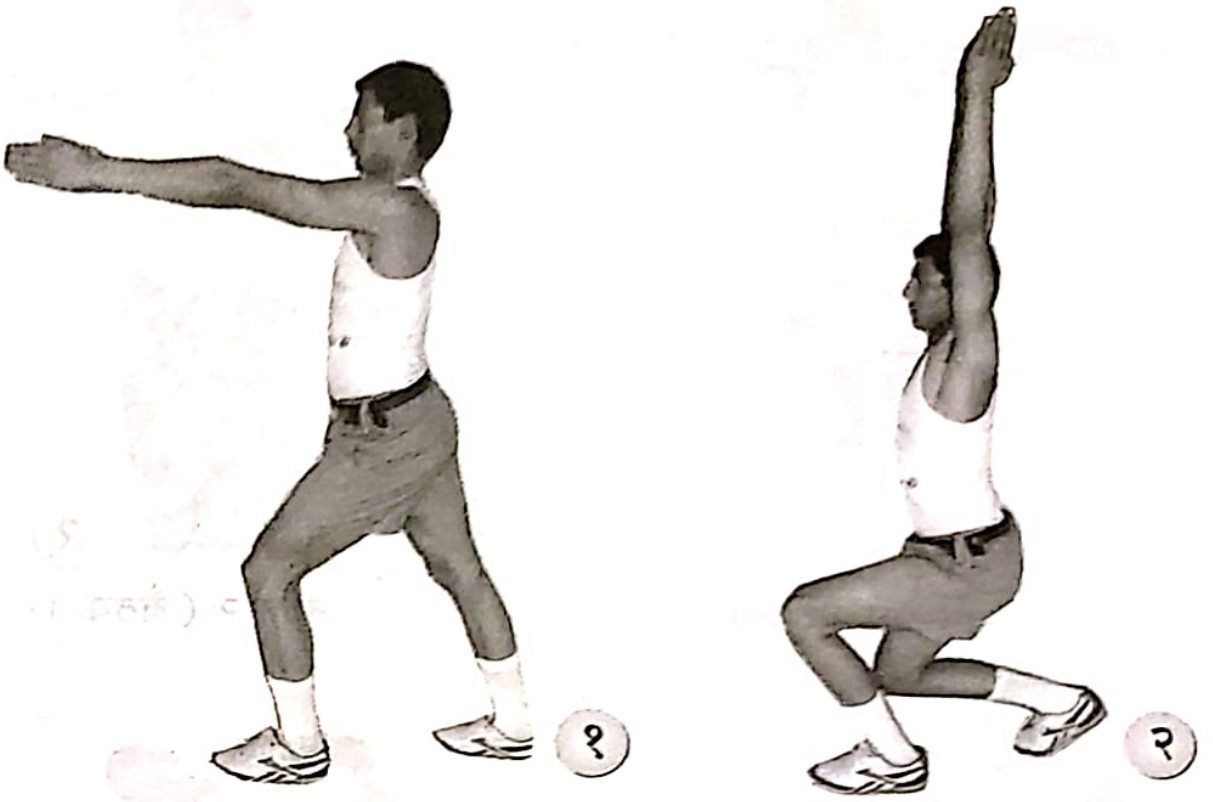
शिरोहस्तनति



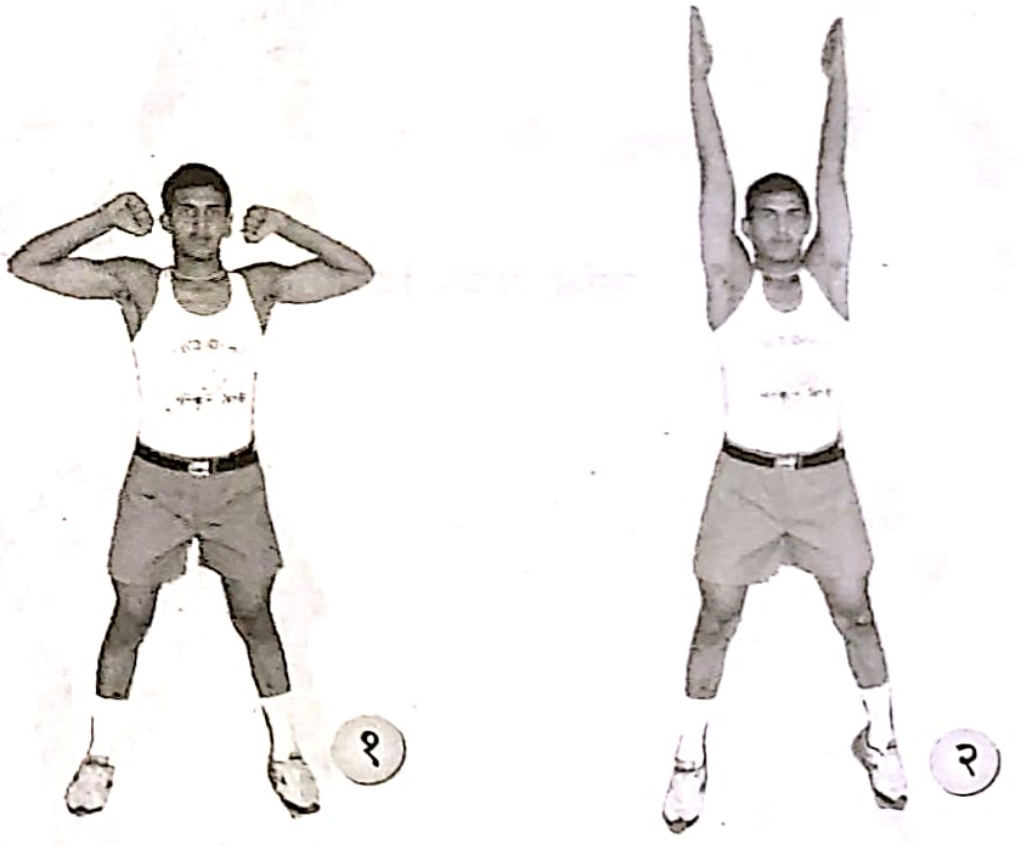
कूर्दन ताल



कूर्दन ताल



हस्तपाद शक्ति विकासक



स्कन्ध शक्ति विकासक



१

नति-२ (बैठक)



२

नति-२ (बैठक)



१



२

कुक्षि शक्ति विकासक

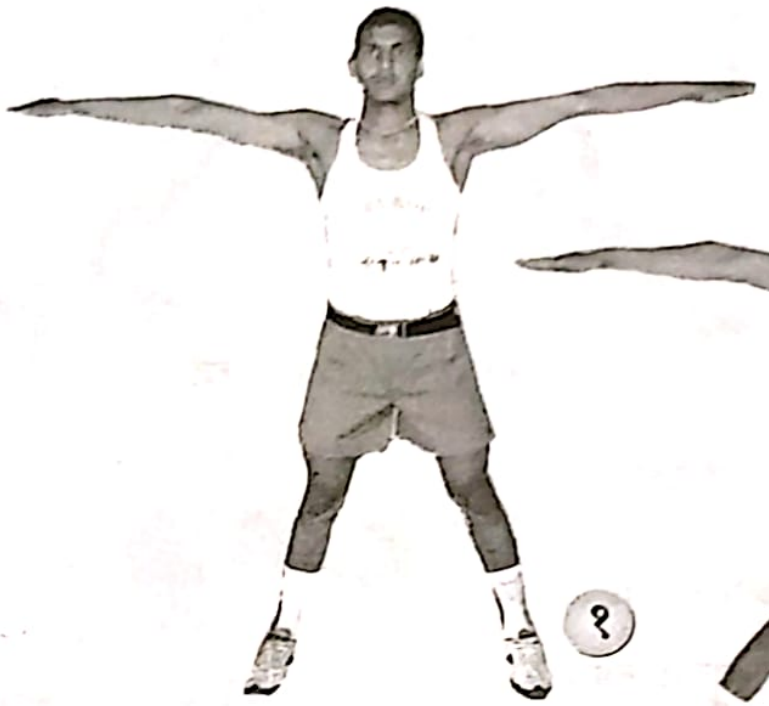


१

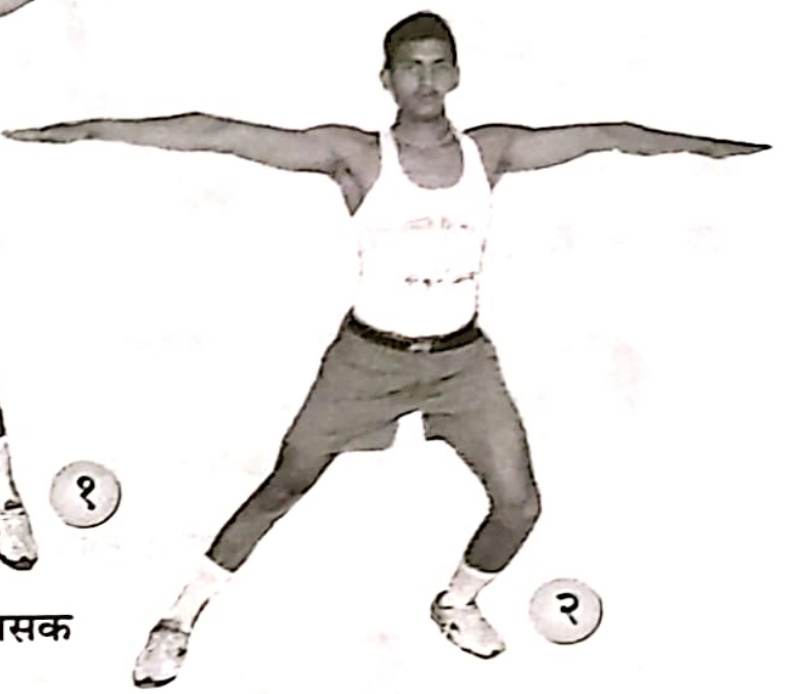


२

कुक्षि शक्ति विकासक-२



जानु शक्ति विकासक



जानु शक्ति विकासक



पाद शक्ति विकासक



पाद शक्ति विकासक

दण्ड



दण्ड के लिए उपविश



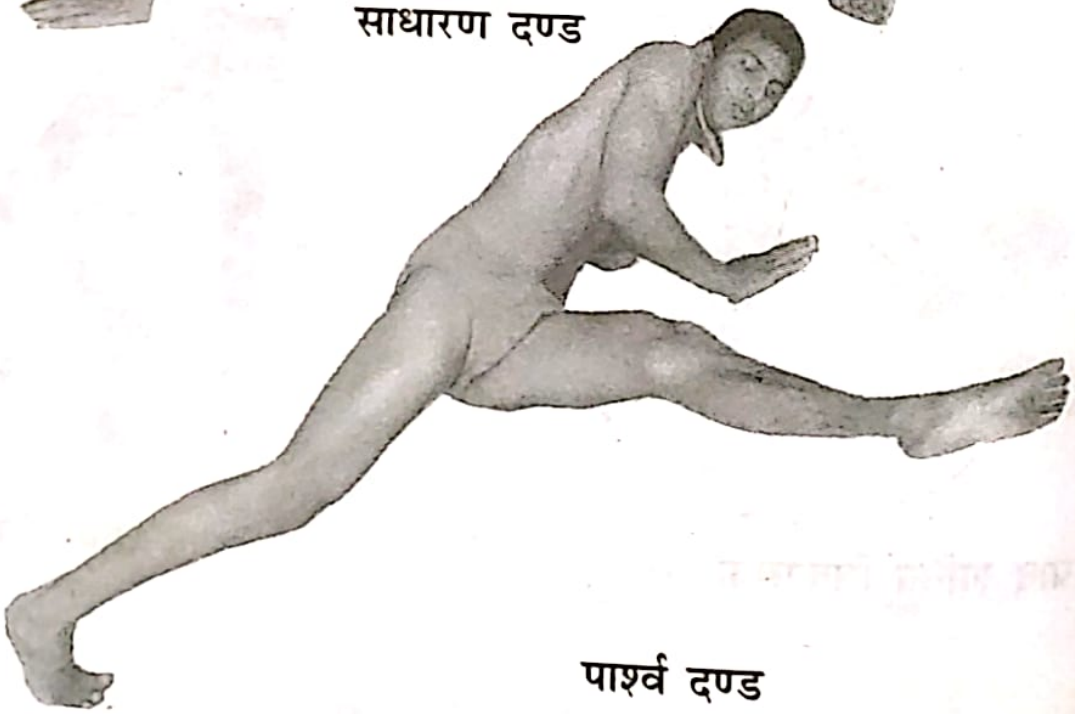
दण्ड के लिए सज्ज



साधारण दण्ड १



साधारण दण्ड २

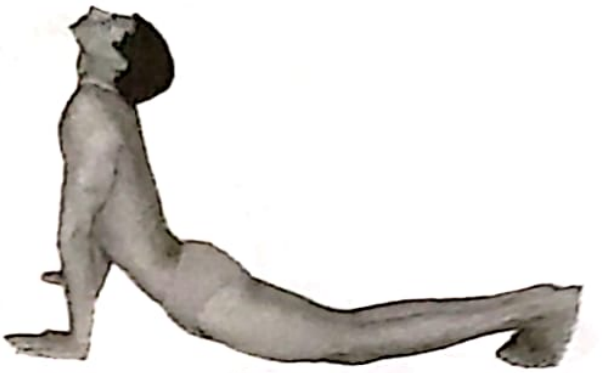


पार्श्व दण्ड



वृश्चिक दण्ड-१

१



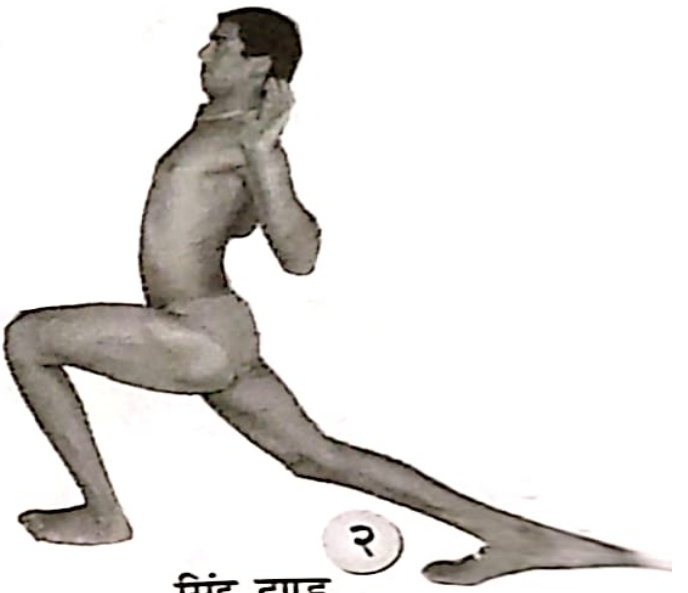
वृश्चिक दण्ड

२



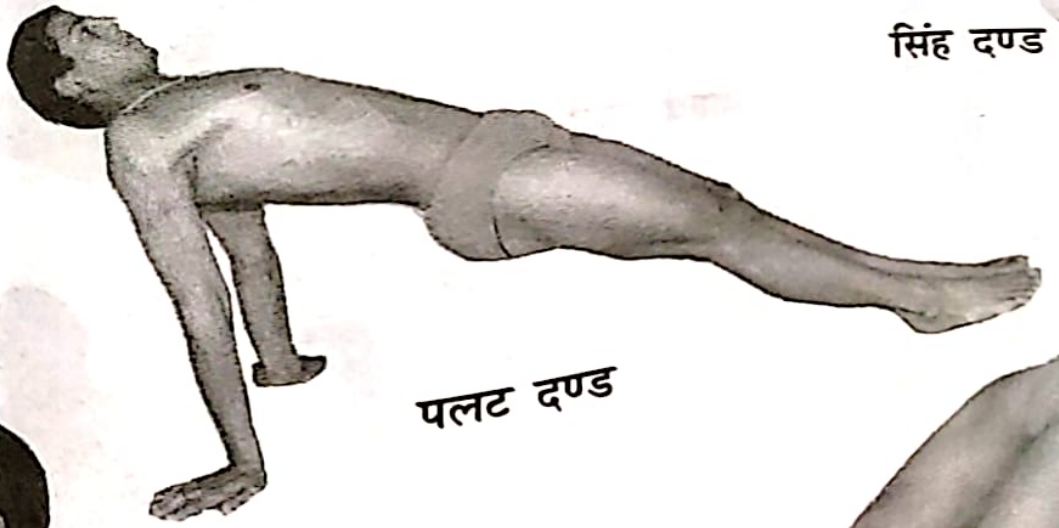
१

सिंह दण्ड



२

सिंह दण्ड



पलट दण्ड



१

बक दण्ड



२

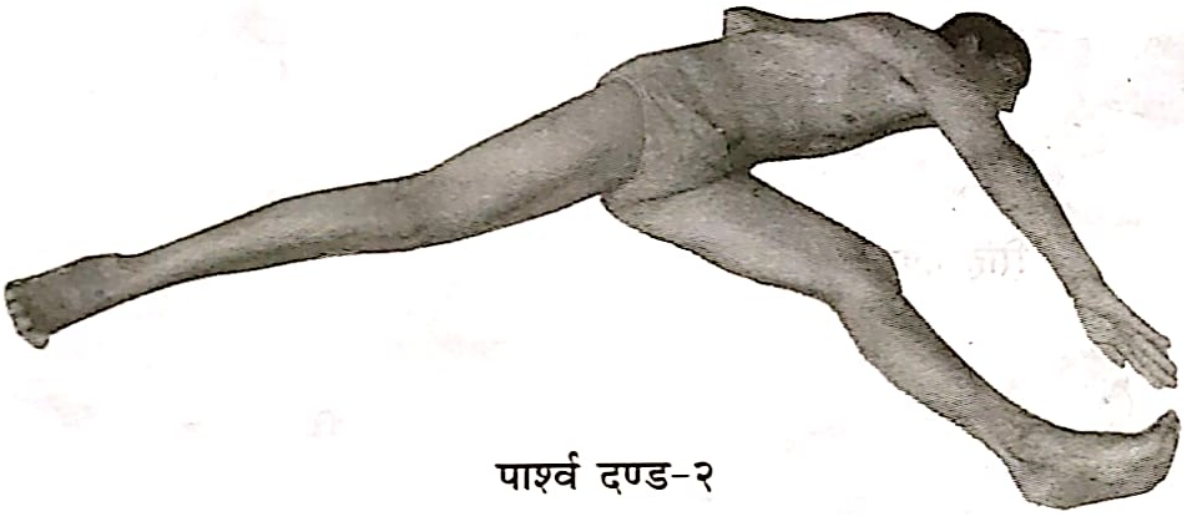
बक दण्ड



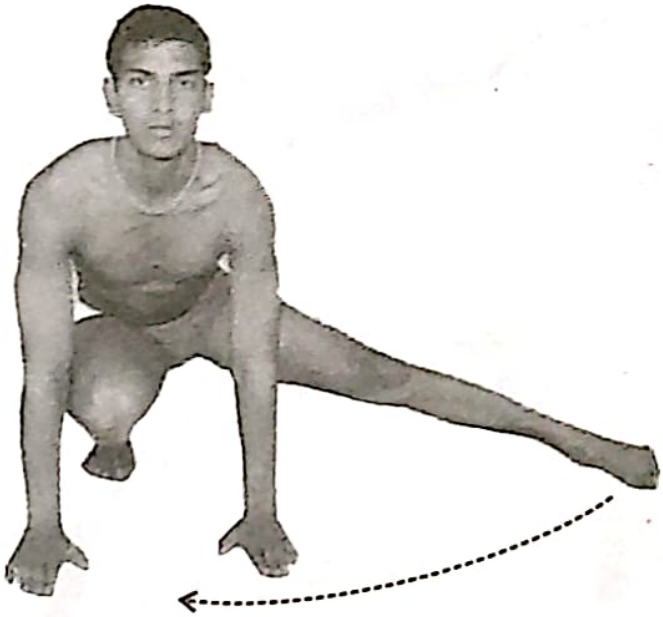
वृश्चिक दण्ड-२ १



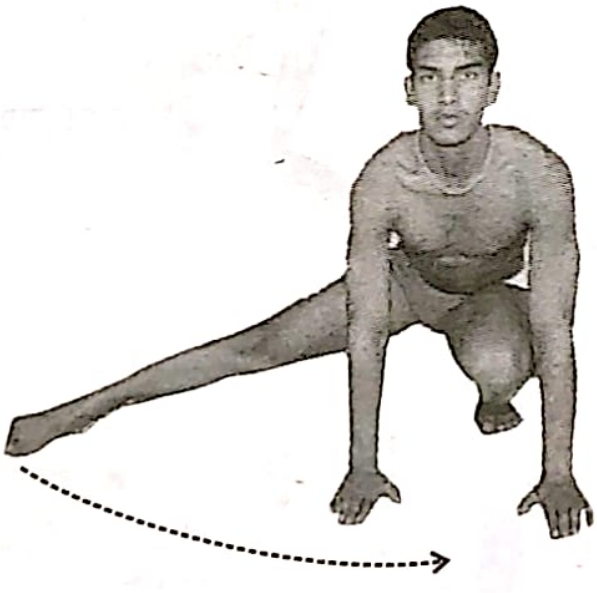
२ वृश्चिक दण्ड-२



पार्श्व दण्ड-२



चक्र दण्ड-१



चक्र दण्ड-२

बैठक



बैठक के लिए सज्ज



साधारण बैठक



सपाट बैठक



पहलवानी बैठक



पवित्रा बैठक



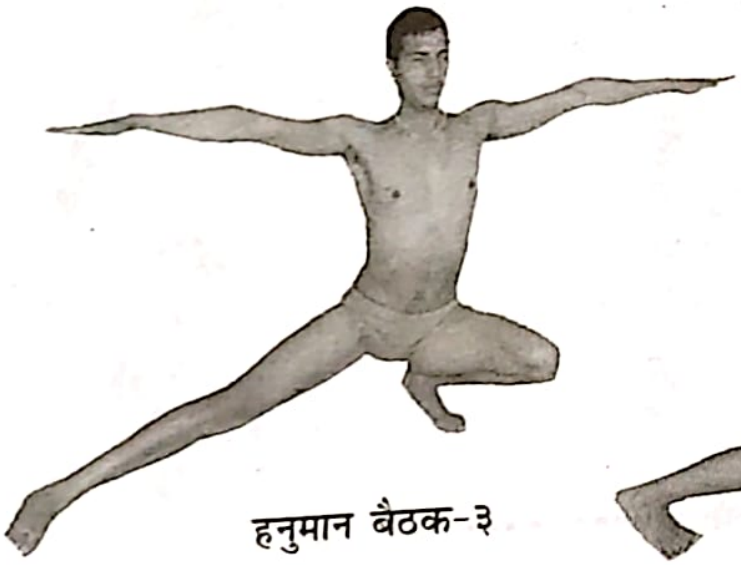
लेहरा बैठक



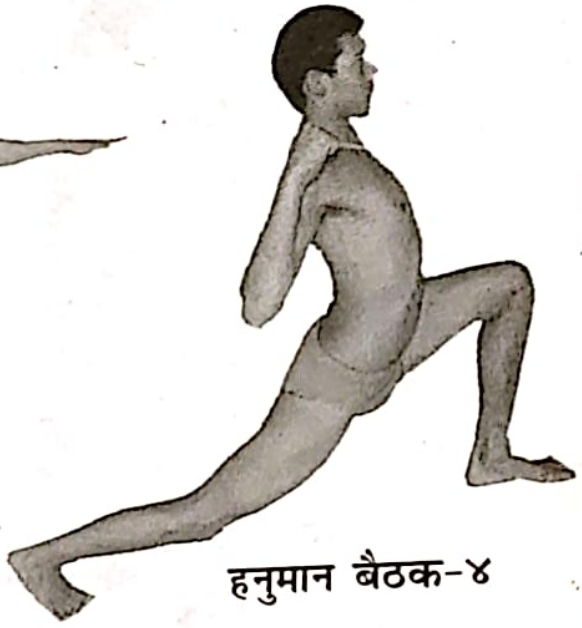
हनुमान बैठक-१



हनुमान बैठक-२



हनुमान बैठक-३



हनुमान बैठक-४



घुटना मरोड़ बैठक



घुटना मरोड़ बैठक

सूर्य नमस्कार



आसन



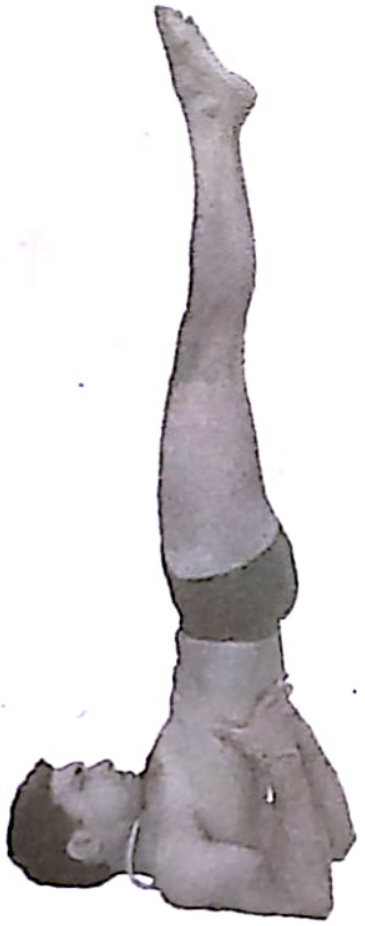
शवासन



पवनमुक्तासन



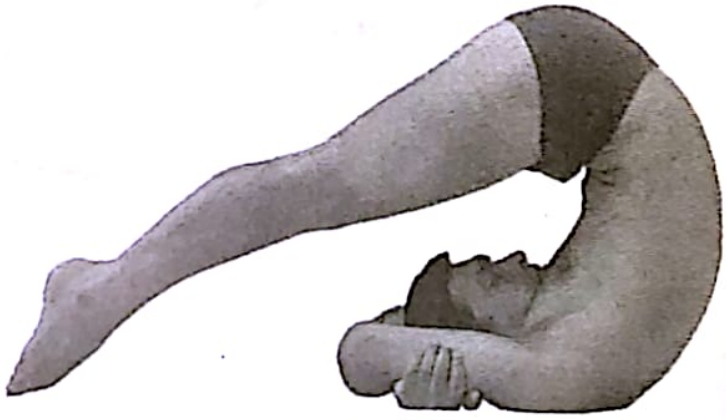
उत्तानपादासन



सर्वांगासन



मत्स्यासन



हलासन



मकरासन



भुजंगासन



शलभासन



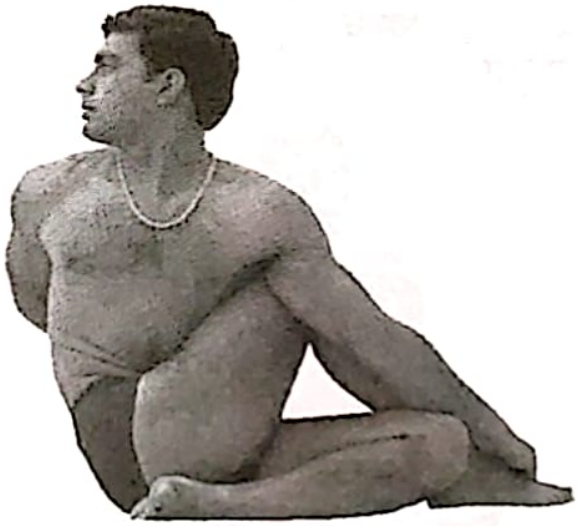
धनुरासन



दण्डासन



पश्चिमोत्तानासन



अर्धमत्येन्द्रासन



वज्रासन



उष्ट्रासन



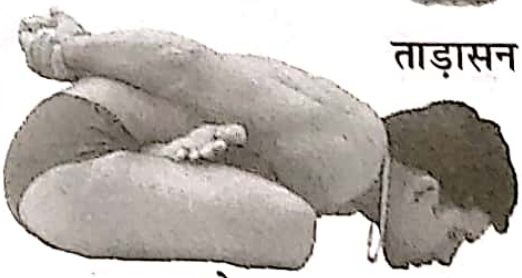
सुप्तवज्रासन



अर्धचन्द्रासन



ताड़ासन



योगमुद्रा



सिद्धासन



पद्मासन

संस्कृति - शक्ति - सेवा

